योग सन्दर्शिका

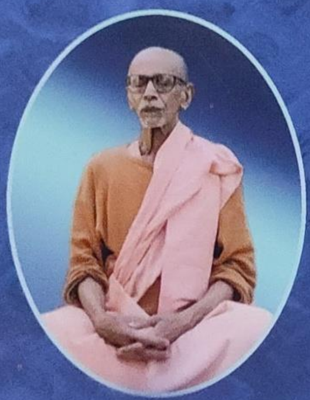

स्वामी चिदानन्द

योग-सन्दर्शिका

PRACTICAL GUIDE TO YOGA

का अविकल अनुवाद

लेखक

श्री स्वामी चिदानन्द

अनुवादक

श्री शिवगोविन्द गुप्त

एम.ए., एल.टी., साहित्यरत्न

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

षष्ठ हिन्दी संस्करण : २०१७
(२,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

HC 45

PRICE: 55/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्यनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल,
उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकाशकीय

दिव्य जीवन संघ (द डिवाइन लाइफ सोसायटी) ने हठयोग तथा योगासनों पर प्रथम बार गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की पुस्तक प्रकाशित की थी। वर्ष १९७७ में आश्रम के वरिष्ठ साधक तथा हठयोग-प्रशिक्षक श्री स्वामी योगस्वरूपानन्द जी (उन दिनों ब्रह्मचारी कृष्णमूर्ति के नाम से ज्ञात) ने परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वारा हठयोग तथा आसनों पर दिये गये व्यावहारिक निर्देशों को मूल अँगरेजी पुस्तक 'Practical Guide to Yoga' में संकलित किया था। यह पुस्तक सम्भवतः इस विषय पर दिव्य जीवन संघ का दूसरा प्रकाशन थी। प्रस्तुत पुस्तक 'योग-सन्दर्शिका' मूल पुस्तक का हिन्दी संस्करण है।

योग-साधना में शारीरिक स्वस्थता की अनिवार्यता के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। अपने दैनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए गृहस्थों के लिए भी शारीरिक स्वस्थता का महत्त्व है। इस पुस्तक में कुछ चुने हुए आसनों की व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। पूर्णकालिक साधक ही नहीं, गृहस्थ जन भी सरलतापूर्वक इन आसनों का अभ्यास कर सकते हैं। इस दृष्टि से जनसाधारण तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए इस पुस्तक की विषय-सामग्री एक वरदान है।

इस पुस्तक में साधकों के मन में उठने वाले अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं, उनकी शंकाओं का समाधान किया गया है तथा योगासनों से होने वाली सम्भावित हानियों से सम्बन्धित अनावश्यक तथा आधारहीन मान्यताओं को निर्मूल करने का प्रयास किया गया है। ध्यान के परम लक्ष्य-जिसकी ओर अभ्यासी जिज्ञासु योगासनाभ्यास में पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् बढ़ता है-को प्राप्त करने हेतु व्यावहारिक निर्देश भी इसमें दिये गये हैं।

पुस्तक में वर्णित अधिकांश आसनों को चित्रित करने के लिए परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने स्वयं अपने छायाचित्र प्रदान किये थे। इस दृष्टि से पुस्तक का महत्त्व बढ़ गया है।

श्री शिवगोविन्द गुप्त, एम.ए., एल.टी., साहित्यरत्न ने मनोयोगपूर्वक मूल पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया है। इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। अन्य भाषाओं के अतिरिक्त अँगरेजी में इस पुस्तक के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। आशा है, प्रस्तुत हिन्दी संस्करण का भी सुधी पाठक स्वागत करेंगे।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

भूमिका

आद्य योगीश्वर भगवान् शिव तथा जगद्गुरु योगेश्वर भगवान् कृष्ण को प्रणाम। ब्रह्मलीन योगी गुरु प्रातःस्मरणीय पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम। आत्मविकास के मार्ग के पथिक योग के समस्त विद्यार्थी योगाभ्यास में पूर्ण सफलता प्राप्त करें-यह मेरी हार्दिक कामना है!

प्रस्तुत पुस्तक के लिए भूमिका लिखते हुए मुझे अति-प्रसन्नता हो रही है। योग के विद्यार्थियों के लिए यह एक उत्तम सन्दर्भ-सामग्री है। यह उन लोगों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है जो अपने शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्ति के लिए योगासनों का दैनिक अभ्यास करते हैं। दैनिक योग-साधना के समस्त पक्षों पर प्रकाश डालने वाली बहुमूल्य सामग्री इस पुस्तक के पृष्ठों में समाहित है। सूर्यनमस्कार तथा ध्यान से सम्बन्धित विवरणों को भी इस पुस्तक में सम्मिलित कर दिये जाने के कारण पाठकों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी बन गयी है। चित्रों के कारण इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व आप इस पुस्तक को आरम्भ से अन्त तक पढ़ डालें। अध्याय संख्या १, २, ३ तथा २१ पर विशेष ध्यान दें। सम्यक् दृष्टिकोण रखते हुए आध्यात्मिक भाव से अपना दैनिक योगाभ्यास-कार्यक्रम प्रारम्भ करें। अभ्यास-पथ पर धीरे-धीरे आगे बढ़ें। अन्तिम सीमाओं पर पहुँचने का प्रयत्न न करें। जल्दबाजी न करें। जिस आसन या क्रिया का अभ्यास आप करें, केवल उसी पर मन को संकेन्द्रित करें। इससे अभ्यास अधिक प्रभावकारी बन जायेगा। सन्तुलित तथा तनावमुक्त रहते हुए, प्रसन्न मन से अभ्यास करें। योगाभ्यास के स्थल को साफ-सुथरा रखें। अभ्यास करते समय पहने जाने वाले कपड़ों तथा प्रयोग में लाये जाने वाले कम्बलों आदि को किसी अन्य उद्देश्य से उपयोग में न लायें। इस बात का सदैव स्मरण रखें कि योग एक पवित्र विद्या है। वह शारीरिक, मानसिक तथा प्राणिक संवर्धन एवं आध्यात्मिक प्रकटन की एक प्रणाली है। इसका अभ्यास मुख्यतः एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, यद्यपि यह (प्रक्रिया) भौतिक शरीर, श्वास तथा मन के नियन्त्रण पर आधारित है। यदि आप इन बातों को ध्यान में रखेंगे, तो आपको योग-जो समग्र मानवता को स्वास्थ्य, शान्ति तथा आनन्द प्रदान करने में सहायक है-से अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

योगाभ्यास में नियमित रहें; नियत समय पर ही अभ्यास करने का प्रयत्न करें। चाहे थोड़ा ही अभ्यास करें; परन्तु पुस्तक में दिये गये निर्देशों के अनुसार ही करें। यदि अपने वर्तमान दैनिक कार्यक्रम के कारण आप योगाभ्यास के लिए समय नहीं निकाल पाते, तो मेरा सुझाव है कि आप सुबह एक घण्टा पहले उठ जाया करें। इस प्रकार आपको एक घण्टा अधिक समय मिल जायेगा। इस समय में आप योगाभ्यास कर सकते हैं। अध्याय ३ में दिये गये आवश्यक निर्देशों का पालन करें। योग के प्रति वास्तविक रुचि तथा स्थायी उत्साह बनाये रखें। आसनों का अभ्यास करते समय प्रारम्भ से ही उनके पूर्ण रूप की पराकाष्ठा तक जाने का प्रयास न करें। अभ्यास करते समय धीरे-धीरे आगे बढ़ें। आप यथासमय आसनों को भली प्रकार से करने लगेंगे। आपका शरीर

अनावश्यक क्लान्ति तथा तनाव से भी मुक्त रह सकेगा। अभ्यास की सम्पूर्ण अवधि में अपने विवेक तथा सामान्य बोध का उपयोग करें।

एक आवश्यक बात। आजकल योग के विद्यार्थियों को यह कह कर भयभीत कर दिया जाता है कि योगासनों से शरीर और मन को हानि पहुँच सकती है तथा शरीर अनेक असाध्य व्याधियों से ग्रस्त हो सकता है। यह भी कह दिया जाता है कि योग्य गुरु या प्रशिक्षक के मार्गदर्शन के अभाव में योगाभ्यास करना हितकर नहीं है। मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। यद्यपि मुख्य साधना के रूप में हठयोग अथवा कुण्डलिनीयोग के पूर्णकालिक अभ्यास के लिए योग्य गुरु की आवश्यकता होती है; परन्तु किसी साधारण व्यक्ति द्वारा सामान्य स्वास्थ्य बनाये रखने के उद्देश्य से कुछ चुने हुए आसनों का अभ्यास करते समय इस प्रकार का नियम लागू नहीं होता। सामान्य रूप से स्वस्थ व्यक्ति नित्य आधे से एक घण्टे के लिए कुछ चुने हुए आसनों का अभ्यास कर सकते हैं। इसमें किसी प्रकार का जोखिम नहीं। इस प्रकार के अभ्यास के परिणाम स्वास्थ्यकर तथा हितकर होते हैं। यदि आसनों से सम्बन्धित निर्देशों का भली प्रकार पालन किया जाये, तो आसनों का इस प्रकार का सीमित अभ्यास करते समय भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

ब्रह्मचारी श्री कृष्णमूर्ति जी (अब स्वामी योगस्वरूपानन्द) ने इस सन्दर्शिका की पाठ्य-सामग्री का सुविचारित संकलन किया है। योग के विद्यार्थी के रूप में वह निष्कपटता से ज्ञान-प्राप्ति में रत हैं। इसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। सामान्यतः साधना विशेषतः योग, आसन, प्राणायाम आदि पर मैंने उनसे विचारपूर्वक चर्चा की थी। उस अवसर पर मेरे निर्देशों तथा व्याख्यानों को उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना तथा उन्हें लिपिबद्ध भी किया। उनके इस परिश्रम का परिणाम ही यह सन्दर्शिका है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि उनके इस सत्प्रयास का फल योग के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए उपयोगी तथा ठोस सामग्री प्रस्तुत करने वाली इस पुस्तक के रूप में अब समस्त साधकों के लिए उपलब्ध है। मेरी कामना है कि पुस्तक का सर्वाधिक प्रचार हो! ईश्वर समस्त योगाभ्यासियों को स्वास्थ्य, शक्ति तथा सफलता प्रदान करें!

-स्वामी चिदानन्द

दो शब्द

'योग' शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत है। अधिकांश व्यक्ति हठयोग या राजयोग (अष्टांगयोग) को ही योग मानते हैं। यद्यपि योग के बारे में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है, तथापि एक सामान्य व्यक्ति के लिए योग अब भी एक रहस्य है। महाभारत तथा (उसके एक अंश) भगवद्गीता को भी योगशास्त्र कहा जाता है। समस्त योग-साहित्य में इस बात पर बल दिया गया है कि मानव की समस्याओं का समाधान केवल योग के पास है।

आचार्य शंकर ने अपने ग्रन्थ 'अपरोक्षानुभूति' में राजयोग की चर्चा की है तथा अन्त में लिखा है-"इस प्रकार समस्त अंगों समेत राजयोग वर्णित किया गया। जिन व्यक्तियों की सांसारिक कामनाएँ आंशिक रूप से क्षीण हो पायी हैं, उनके लिए राजयोग के साथ हठयोग को भी संयुक्त कर देना चाहिए।" हठयोगप्रदीपिका के अनुसार, "त्रिविध तापों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए हठयोग एक शरण्यस्थल के समान है। प्रत्येक प्रकार के योग का अभ्यास करने वाले साधकों का आधार हठयोग है" (१ - १०) | हठयोग के अन्तर्गत आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा तथा क्रियाएँ सम्मिलित हैं। योग-साधकों के लिए यह चिन्तन का विषय है कि कब तथा कैसे योगाभ्यास प्रारम्भ किया जाये।

यह मेरा सौभाग्य है कि अपनी आध्यात्मिक साधना में मैं परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज का मार्गनिर्देशन प्राप्त करता रहा हूँ। लालबहादुर शास्त्री नेशनल एकाडेमी ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन, भारत सरकार, मसूरी, उत्तराखण्ड के प्रथम श्रेणी के अधिकारियों के लिए योग-कक्षाएँ संचालित करने हेतु सन् १९७२ में मेरी प्रतिनियुक्ति की गयी थी। तब परम पूज्य स्वामी जी ने स्वयं इन कक्षाओं के पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार की थी तथा तदनुसार योगासन, सूर्यनमस्कार तथा प्राणायाम के एक समूह का अभ्यास कैसे कराया जाये, इसके बारे में मुझे विधिवत् शिक्षा दी थी।

उपर्युक्त एकाडेमी तथा अन्य संस्थाओं में योग-कक्षाएँ संचालित करते समय मैंने अब तक इस पाठ्यक्रम का अक्षरशः अनुकरण किया है। प्रत्येक शिक्षण-सत्र के अन्त में मैं विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करता रहा हूँ। उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नों ने मेरा ध्यान एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया जिसमें आधुनिक समाज के व्यस्त मानव के लिए ऐसे आसन-प्राणायाम-समूह से सम्बन्धित निर्देश हों जिनका अभ्यास एक घण्टे के अन्दर सम्पन्न किया जा सके। जब मैंने स्वामी चिदानन्द जी महाराज के समक्ष ऐसी पुस्तक से सम्बन्धित अपना सुझाव प्रस्तुत किया, तब उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया तथा योग की एक पुस्तक को प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। अब प्रश्न उठा कि योगासनों के चित्र कहाँ से और कैसे उपलब्ध हों? तब पूज्य स्वामी जी ने योगासनाभ्यास के अपने छायाचित्रों को भी प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। इस प्रकार वर्ष १९७७ में इस पुस्तक के मूल अँगरेजी संस्करण का विमोचन किया गया। परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने जब ये छायाचित्र खिंचवाये थे, तब वह अपने जीवन के ६० वर्ष पूरे कर चुके थे। इस अवस्था में भी योगासनाभ्यास के प्रति उनकी रुचि ने ५० वर्ष से भी अधिक की आयु के अनेक ऐसे व्यक्तियों को प्रेरित किया जो यह समझते थे कि योग मात्र युवकों के लिए है, वृद्धों के लिए नहीं। इस पुस्तक के चित्रों को देख कर योग-सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों का निवारण हो जाता है। अनेक भारतीय भाषाओं तथा फ्रांसीसी भाषा में इस पुस्तक का अनुवाद किया जा चुका है। यह तथ्य इस पुस्तक की उपादेयता का द्योतक है।

ईश्वर तथा पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना है कि वे अपने अनुग्रह की वर्षा आपके ऊपर करें तथा आपकी योग-साधना को सफल बनायें!

-स्वामी योगस्वरूपानन्द

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो ।
तुम सच्चिदानन्दघन हो ।
तुम सबके अन्तर्वासी हो ।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,

जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें ।

-स्वामी शिवानन्द

प्रार्थनाएँ

प्रथम प्रार्थना अभ्यास आरम्भ करने के पहले तथा द्वितीय प्रार्थना अभ्यास समाप्त करने के बाद की जानी चाहिए।

१. **ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।**
सह वीर्य करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु ।
मा विद्विषावहै।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अर्थ-हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनों की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हम दोनों का आप साथ-साथ समुचित रूप से पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकार से बल प्राप्त करें, हम दोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो-कहीं किसी से हम विद्या tilde pi परास्त न हों और हम दोनों जीवन-भर परस्पर स्नेह-सूत्र में बँधे रहें, हमारे अन्दर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन् ! तीनों तापों की निवृत्ति हो।

२. **ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।**
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

अर्थ-यह सच्चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्म से ही पूर्ण है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत् पूर्ण है, इसलिए भी वह परिपूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बचा रहता है। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय 3
भूमिका 4
दो शब्द 6
विश्व-प्रार्थना 7
प्रार्थनाएँ 8
१. योग का प्रयोजन 11
२. योगासनों के लाभ 14

३.आवश्यक निर्देश 15

४. खड़े हो कर किये जाने वाले प्रारम्भिक आसन 18

१. ताड़ासन........ 18

२. त्रिकोणासन........ 19

३. सूर्यनमस्कार 20

५. शवासन या मृतासन 29

६. शीर्षासन........ 31

७. सर्वांगासन 33

८. मत्स्यासन 34

९. हलासन........ 36

१०. पश्चिमोत्तानासन 37

११. भुजंगासन 38

१२. मकरासन........ 39

१३. शलभासन 40

१४. धनुरासन 41

१५. चक्रासन 42

१६. अर्ध-मत्स्येन्द्रासन 43

१७. योग-मुद्रा 44

१८. मयूरासन 46

१९. बैठ कर किये जाने वाले आसन 47

१. पद्मासन 47

२.सिद्धरान 48

३. स्वास्तिकासन 48

४. वज्रासन........ 49

२०. प्राणायाम 49

१. गहरे श्वसन का व्यायाम........ 50

२. कपालभाति........ 51

३. भस्त्रिका 52

४. शीतली 52

५. सीत्कारी 53
६. उज्जायी 54
७. सुखपूर्वक प्राणायाम 55
२१.ध्यान 58
२२. उपसंहार 59
परिशिष्ट 59

१. योग का प्रयोजन

भगवद्गीता का कथन है : "**समत्वं योग उच्यते**"[1] चित्त की समता को योग कहते हैं। समस्त वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद भी मनुष्य अभिलिखित इतिहास के प्रारम्भ से अद्यावधि पूर्व-काल की भाँति ही सतत पीड़ा भोग रहा है जो उसके अन्तःकरण और बाह्य विश्व में असामंजस्य के कारण है।

मनुष्य प्रकृति का ही एक अंग है और प्रकृति तीन गुणों, मूल तत्त्वों-तमस्, रजस् और सत्त्व से निर्मित और परिचालित होती है। यह ध्यान दें कि गुणों से यहाँ आशय गुण-धर्म अथवा विशिष्टता से नहीं है; वरन् गुण वे तत्त्व हैं जिनसे विश्व अपने-आपको बहुविध रूपों में अभिव्यक्त करता है। तमस् को गतिहीनता तथा रजस् को गतिशीलता की स्थिति कहते हैं और सत्त्व एक ऐसी स्थिति है जो उपर्युक्त दोनों स्थितियाँ नहीं है और इन दोनों का अतिक्रमण कर जाती है। उद्विकास की प्रक्रिया भी इन तीनों गुणों के द्वारा संचालित होती रहती है। उद्विकास का अर्थ है संरचना और इसका प्रगामी परिवर्द्धन अथवा विस्तार। यह क्रियाशीलता पर ही आधारित है। ये तीनों गुण रस्सी की तीन लड़ियों के समान परस्पर अवलम्बन देते हुए एक-साथ रहते हैं; किन्तु सदा ही इनमें से कोई एक गुण अन्य दोनों गुणों को अपने अधीन रख कर प्रबल होता है।

[1] **(**गीता : २-४८)

हमारे शरीर पर तमोगुण का आधिपत्य रहता है। यह स्थूल, जड़ और दृष्टिगोचर है। प्राण पर रजोगुण की प्रधानता होती है। यह गतिशील है और हम इसका अस्तित्व शरीर की गति से अनुभव करते हैं। मन पर सत्त्वगुण का प्राधान्य होता है। हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व शरीर, प्राण और मन की संहति के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

इस संहति को हम 'मैं' कह कर पुकारते हैं। हमारे सभी दुःख इन तीनों-शरीर, प्राण एवं मन में असामंजस्य होने से होते हैं। यह असामंजस्य की स्थिति ही मनुष्य को त्रिगुणों के चंगुल में डालती है। सामंजस्य की स्थिति ही उसे उसकी पकड़ से छुड़ा सकती है। योग यह सामंजस्य स्थापित करता है और इसके लिए यह आसन, प्राणायाम और ध्यान निर्धारित करता है।

आसन शरीर में, प्राणायाम प्राणों में और ध्यान मन में सामंजस्य लाने के लिए है। तमोगुण का स्वभाव है रोकना या धीमा करना; किन्तु ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि जब रजोगुण द्वारा गति ऊर्ध्वगामी होती है तो तमोगुण अनुपस्थित रहता है। किसी भी प्रक्रिया को चाहे वह कितनी ही छोटी हो, एक शक्ति अभिव्यक्ति हेतु, एक दूसरी शक्ति उसकी प्रगति हेतु तथा एक और अन्य शक्ति उसको रोकने या यथावत् बनाये रखने को चाहिए। जो शक्ति अभिव्यक्त करती है वह सत्त्वगुण है, जो गति का कारण बनती है वह रजोगुण है और जो नियन्त्रित या सम्पोषित करती है वह तमोगुण है। कोई भी गुण, अन्य दो से प्रभावित हुए बिना, अकेले नहीं रहता। जलपात्र के आन्दोलित होने पर उस पात्र में रखा हुआ कमल भी आन्दोलित हो उठता है, पात्र की हलचल जल में संचारित हो जाती है और जल उसे कमल में संचारित करता है। इसी प्रकार कोई भी शारीरिक हलचल प्राण तक पहुँचती है जो इसे पुनः मन को सम्प्रेषित करता है। अपने समस्त व्यक्तित्व को निश्चल या स्थिर रखने के लिए योग आसन, प्राणायाम और ध्यान निर्धारित करता है।

ऋषि दृढ़तापूर्वक घोषणा करते हैं कि एकमात्र योग ही सभी तापों को विनष्ट कर सकता है। भगवद्गीता कहती है : **"योगो भवति दुःखहा**[2] योग दुःख का नाश करने वाला होता है। योग की अनेक परिभाषाएँ हैं, परन्तु मात्र उनको स्मरण करते रहना और उनको (वाणी से) दोहराते रहना वांछित फल उत्पन्न नहीं करता। इसके स्थान में हमें इसे अपने दैनिक जीवन में कार्यान्वित करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति सिद्धान्तों को समझ कर उन्हें अपने दैनन्दिन क्रियाकलापों में प्रयुक्त करता है तो उसका जीवन स्वयमेव योग की एक प्रक्रिया बन जाता है और योग दुःख का नाश करने वाला है ही।

योगाभ्यास मानव-व्यक्तित्व के शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक स्वरूपों में सामंजस्य लाता है। मानव-शरीर विभिन्न अंगों से बनता है। इसी प्रकार योग में भी अनेक अंग हैं। वे प्रधानतः अष्ट-शीर्षों में विभाजित किये गये हैं: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और

[2] **(**गीता : ६-१७)

समाधि।[3] यदि कोई व्यक्ति एक पग आगे बढ़ता है तो शरीर के समस्त अंग भी युगपत् आगे बढ़ते हैं। इसी प्रकार यदि कोई योग के एक अंग का भी अभ्यास पूर्णता की उच्च कोटि तक करता है तो योग के अन्य समस्त अंग अभ्यासकर्ता के बिना अधिक प्रयत्न किये ही अवश्यमेव उसका साथ देते हैं।

योगासनों का अभ्यास करने की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह अनुकूल और सहायक बाह्य वातावरण प्राप्त करे। यह 'यम' अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के पालन से प्राप्त होता है।[4] मन के भय, चिन्ता, श्रम अथवा क्लान्ति से क्षुब्ध होने की दशा में व्यक्ति को योगासन नहीं करने चाहिए। यम के अभ्यास से इन पर विजय पायी जा सकती है। केवल बाह्य अनुकूल वातावरण ही पर्याप्त नहीं है। मन की आन्तरिक प्रशान्ति भी होनी ही चाहिए। यह 'नियम' के पालन से सहज प्राप्तव्य है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान 'नियम' के संघटक हैं ।[5] इस प्रकार योगाभ्यास के लिए यम और नियम दो महत्त्वपूर्ण अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएँ हैं। योग के तृतीय एवं चतुर्थ अंग हैं आसन और प्राणायाम।

आसनों के अभ्यास के समय शरीर के अंगों की गति तीव्र नहीं करनी चाहिए और न शरीर को झटका ही देना चाहिए। इससे श्वास-क्रिया स्वतः नियमित हो जाती है। योगासनों को करते समय मन में दैनिक कार्यक्रम, व्यवसाय अथवा अन्य पदार्थों का चिन्तन नहीं करना चाहिए। ऐसे सभी विचारों से मन को वापस कर लेना चाहिए। इसको पंचम अंग 'प्रत्याहार' कहते हैं। यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि मन को बाह्य पदार्थों से वापस करने पर उसको किस पर स्थिर किया जाये; क्योंकि मन का स्वभाव ही बहिर्गामी है, अतः इस विषय के विशेषज्ञों ने यह सुझाव दिया है कि आसन करते समय व्यक्ति का जिस आसन का अभ्यास चल रहा हो उससे सम्बद्ध शरीर के अंगों पर मन को केन्द्रित करना चाहिए। किसी पदार्थ-विशेष पर मन को थोड़े समय के लिए केन्द्रित करना 'धारणा' कहलाता है।[6] चित्त को ध्येय-पदार्थ में दीर्घकाल तक लगातार टिकाये रखना 'ध्यान' कहलाता है- **"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" ।**"[7] इस प्रकार जब योग के सभी सातों अंगों का सन्निवेश किया जाता है तो उसके परिणामस्वरूप अष्टम अंग 'समाधि'"[8] अनुक्रम-परम्परा से स्वयमेव आ जाता है। इस प्रकार आसनों का अभ्यास समाधि की ओर ले जाता है।

यद्यपि प्राचीन ऋषियों ने अनेक आसनों के नाम ऐसे सरीसृप, पशु और पक्षियों के नामों पर रखे हैं जिनसे उनका कुछ सादृश्य है; किन्तु मानव के अतिरिक्त अन्य ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो योगासनों के साथ योग के आठों अंगों का संयोग करके उनका अभ्यास कर सके। केवल शरीर को मोड़ना ही योगासन नहीं है। योग

---

[3] पातंजलयोगदर्शन : २-२९

[4] पातंजलयोगदर्शन : २-३०

[5] पातंजलयोगदर्शन : २-३२

[6] पातंजलयोगदर्शन : ३-१

[7] पातंजलयोगदर्शन : ३-२

[8] पातंजलयोगदर्शन : ३-३

में समस्त आठों अंगों का सम्मिश्रण होना चाहिए। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने कहा है : **"योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः "** -योग के अष्टांगों के अनुष्ठान से अशुचि का नाश होता है और अशुचि के नाश होने से विवेकख्याति-पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। इस चरमोद्देश्य को ले कर ही योग की संस्तुति की गयी है।

२. योगासनों के लाभ

सुन्दर स्वास्थ्य सर्वोत्कृष्ट परिसम्पत्ति है। सुन्दर स्वास्थ्य के बिना व्यक्ति के जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता की आशा करना असम्भव ही है। सुस्वास्थ्य बनाये रखने तथा मांसपेशियों को विकसित करने के उद्देश्य से आजकल अनेक आधुनिक शारीरिक व्यायाम-पद्धतियाँ हैं। शारीरिक व्यायाम करने वाले इन्हें शारीरिक अवयवों के यन्त्रवत् संचालन और व्यायामों से विकसित करते हैं। ऐसे शारीरिक व्यायामों में मांसपेशियों की गति तीव्र रहती है; परिणामतः हृदय और फुफ्फुसों की क्रिया भी तीव्र हो जाती है। अभ्यासकर्ता बहुत शीघ्र ही श्रान्त हो जाता है। उसमें उद्विग्नता, मनोवैज्ञानिक तनाव और भय का होना भी सम्भव है। कुछ व्यायाम केवल वक्षःस्थल और हाथों को ही पुष्ट करते हैं जिससे शरीर का विकास असन्तुलित होता है; परिणामतः व्यक्तित्व में असामंजस्य आ जाता है।

योगासनों से शरीर की समस्त मांसपेशियों, आन्तरिक अवयवों, स्नायुओं एवं शारीरिक ढाँचे का सुसमन्वित विकास होता है। इनमें द्रुत गति नहीं होती, अतएव शक्ति का अपव्यय नहीं होता। योगासनों के करने में शरीर के अवयवों की गति मन्द एवं तालबद्ध होती है। दूसरी ओर, ये शक्ति का संरक्षण करते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण आसनों और एक या दो प्राणायामों में नियमित अभ्यास से तीनों महत्त्वपूर्ण अंग अर्थात् हृदय, फुफ्फुस और प्रमस्तिष्क-मेरुदण्ड-सहित मस्तिष्क स्वस्थ दशा में रखे जाते हैं। शारीरिक अवयवों की स्वस्थ क्रियाशीलता सुन्दर स्वस्थ स्नायुओं पर निर्भर करती है। मस्तिष्क, हृदय और फुफ्फुस जीवन की त्रिपादिका हैं। हृदय और फुफ्फुस मस्तिष्क के नियन्त्रण में रहते हैं। प्रमस्तिष्क-मेरुदण्डीय प्रणाली-सहित ये तीनों महत्त्वपूर्ण अवयव नियमित योगासनों द्वारा स्वस्थ अवस्था में रखे जाते हैं।

यदि मांसपेशियों को उपयुक्त व्यायाम नहीं कराया जाता तो वे संकुचित हो जाती हैं और शरीर में कड़ापन तथा भारीपन आ जाता है। फलतः रुधिर-संचार एवं स्नायु-वेग में बाधा आ जाती है; उनकी अक्रियाशीलता अवयवों में गड़बड़ी पैदा करती है। योगासनों में से कुछ आसन अवयवों के विकास के समनुरूप ही, मांसपेशियों के विकास पर विशेष प्रभावी होते हैं।

इन योगासनों का स्वरूप (व्याधि) निवारक और आरोग्यकर दोनों ही होता है। कुल मिला कर ये नैसर्गिक स्वास्थ्य बनाये रख कर व्याधियों को शरीर पर आक्रमण करने से निवारण करते हैं। कुछ आसन वर्तमान व्याधियों जैसे प्रतिश्याय, खाँसी, मलावरोध और जठरीय रोगों को भी दूर करते हैं।

कतिपय योगासनों में पश्चगामी तथा अग्रगामी गति होती है। अन्य आसन मेरुदण्ड की पार्श्विक गति में सहायक होते हैं। कुछ आसन फुफ्फुस, गले आदि को स्वच्छ करते हैं। इस प्रकार शरीर सम्पूर्ण रूप में विकसित, स्फूर्त और शक्तिवान् हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर नमनशील हो जाता है जिससे शरीर के किसी भी अंग में रुधिर के गतिरोध का निवारण होता है।

इन योगासनों का एक अन्य विलक्षण रूप है ग्रन्थियों की अन्तःस्रावी प्रणाली पर और नलिकाविहीन ग्रन्थियों-जैसा कि इनको कहा जाता है-पर इनका प्रभाव। कुछ चुने हुए आसनों के द्वारा अवटु-ग्रन्थि, पीयूष-ग्रन्थि तथा शंकुरूप-ग्रन्थि की विकृत क्रियाशीलता ठीक हो जाती है। इन सबके अतिरिक्त, कुछ आसन मनुष्य के मस्तिष्क, उसकी एकाग्रता (धारणा) शक्ति और स्मरण शक्ति पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं। वे उसकी प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्ति को भी जाग्रत करते हैं। आधुनिक शारीरिक व्यायाम प्राण को बहिर्गामी बनाते हैं, जब कि योगासन प्राण की धारा को अन्तःस्रावी बनाते हैं। ये योगासन आभ्यन्तरिक अवयवों की क्रियाशीलता के नियमन द्वारा स्वास्थ्य-सुधार में सहायक होते हैं। इनका नियमित अभ्यास प्रत्येक अभ्यासी को सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, शक्ति, उत्साह और बल प्रदान करता है। योगासनों के सावधानीपूर्वक नियमित अभ्यास से सम्पूर्ण व्यक्तित्व मनोहर एवं आकर्षक बन जाता है।

जब एक बार इस प्रणाली के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लिया जाये तो यह सरल, सुनिश्चित प्रभावोत्पादक, मितव्ययी और बिना किसी बाह्य (उपकरण की) सहायता के अभ्यास-योग्य हो जाती है।

३.आवश्यक निर्देश

चेतावनी और सावधानी हेतु एक शब्द। इसमें कुछ विधि-निषेध हैं जिनका कि, किसी भी मूल्य पर हो, पालन करना ही चाहिए जिससे कि योगाभ्यास से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके और उसके हानिकारक परिणामों का निवारण किया जा सके :

(१) साधारणतः बारह वर्ष की आयु के पश्चात् ही युवकों को योगासनों का अभ्यास करना चाहिए, इसके पूर्व नहीं। शीर्षासन और सर्वांगासन-जैसे कुछ विशिष्ट आसनों के लिए न्यूनतम आयु-सीमा अधिक है (देखिए, इन आसनों के अन्तर्गत 'सावधानी' शीर्षक)।

(२) व्याधियों को दूर करने के लिए आसनों का अभ्यास अनुभवी मार्गदर्शक की वैयक्तिक देख-रेख में ही करना चाहिए।

(३) जो पुरानी नेत्र-व्याधि, कर्णस्राव, उच्च रक्तचाप और हृदय की व्याधियों से ग्रस्त vec ET उनको योगासनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वे केवल शवासन द्वारा शिथिलीकरण का अभ्यास कर सकते हैं जो उनके लिए अति-लाभदायक है।

(४) प्रातः चार या साढ़े चार बजे उठ जाइए। यदि निद्रालुता मालूम पड़े तो खड़े हो कर किये जाने वाले आसन और चार से छह तक सूर्यनमस्कार करें। तब मल-मूत्र-विसर्जन से निवृत्त हो कर अपने मुख को धो डालिए।

(५) यदि प्रातःकाल उठते ही मल-विसर्जन से निवृत्त होने की आपकी आदत न हो तो आप बिना शौच के भी आसनों का अभ्यास कर सकते हैं। आसन, प्राणायाम और ध्यान को समाप्त करके आप शौचालय जा सकते हैं।

(६) अपनी क्षमता या सुविधा के अनुसार गुनगुने या ठण्ढे जल से स्नान कर लीजिए।

(७) एक लँगोटी या कौपीन या बन्धन पट्टी या सटा हुआ अण्डरवियर पहनिए।

(८) फर्श पर तह करके एक कम्बल बिछाइए और उस पर योगासनों का अभ्यास कीजिए।

(९) आसन करते समय ऐनक या ढीले आभूषण मत पहनिए। ये टूट-फूट सकते हैं और चोट भी पहुँचा सकते हैं।

(१०) यदि आपको प्रातः ही बिस्तर की चाय पीने की आदत है तो चाय के पश्चात् चार से छह संख्या में सूर्यनमस्कार का अभ्यास करें और तब मल-मूत्र का त्याग कर अभ्यास प्रारम्भ करें।

(११) आसनों को खाली पेट प्रभात में अथवा भोजन के कम-से-कम तीन या चार घण्टे पश्चात् करना चाहिए। आसनों के अभ्यास के पश्चात् आधे घण्टे का अन्तर पूर्ण भोजन या स्नान करने हेतु अवश्य होना चाहिए।

(१२) आसनों के अभ्यास के दश मिनट के पश्चात् एक प्याला दूध या चाय ली जा सकती है। यदि अभ्यास से पूर्व लेना हो तो कम-से-कम आधे घण्टे से एक घण्टे तक का समयान्तर होना ही चाहिए।

(१३) प्रारम्भ में प्रत्येक आसन का अभ्यास कुछ सेकण्ड तक किया जा सकता है और शनैः -शनैः समय की अवधि बढ़ायी जा सकती है। शरीर में झटका या तीव्र गति नहीं होनी चाहिए।

(१४) आसनों और प्राणायाम के अभ्यास के पश्चात् सुखासन में बैठना चाहिए और अपनी सुविधा के अनुसार कम-से-कम दश से तीस मिनट तक ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

(१५) यदि प्रातः सभी आसनों का अभ्यास करना सम्भव न हो तो खड़े होने के आसन और सूर्यनमस्कार तथा तत्पश्चात् शवासन करना चाहिए। शेष आसनों और प्राणायामों का अभ्यास सायंकाल में किया जा सकता है।

(१६) शीर्षासन और प्राणायाम प्रारम्भ करने के पूर्व व्यक्ति को देखना चाहिए कि उसका शरीर और मस्तिष्क प्रशान्त, निराकुल और अनुद्विग्न है। यदि अभ्यासी श्रान्त, मानसिक थकानयुक्त या भावात्मक उलझन में हो तब शवासन में दश से पन्दरह मिनट तक विश्राम करना चाहिए और तब अभ्यास आरम्भ करना चाहिए।

(१७) आसनों का अभ्यास जहाँ ताजी हवा का मुक्त प्रवाह हो ऐसे अच्छे वातायनयुक्त स्वच्छ कमरे में करना चाहिए। ठण्डे प्रदेशों में बन्द कमरे में भी अभ्यास किया जा सकता है। फर्श समतल होना चाहिए। आसनों का अभ्यास खुले, हवादार स्थानों और समुद्र तट के समीप तथा नदी की बालू-पीठिका पर भी किया जा सकता है।

(१८) यदि आसनों के अभ्यास का क्रम विषम (असमर्थ) परिस्थितियोंवश कभी बन्द करना पड़े तो विपरीत प्रतिक्रिया का कोई भय नहीं है। कुछ दिनों पश्चात् आप पुनः अभ्यास प्रारम्भ कर सकते हैं।

(१९) यदि आप नवीन अभ्यासकर्ता हैं तो आसनों का अभ्यास सर्वांगासन से आगे को प्रारम्भ करना चाहिए। योगमुद्रा के पश्चात् शीर्षासन का प्रयास करें। शीर्षासन से पूर्व शवासन में एक या दो मिनट विश्राम कर लेना चाहिए। जब शीर्षासन कर रहे हों तो मस्तिष्क-कोशाणु ताजे तथा अश्रान्त होने चाहिए। शरीर पूर्णतः विश्राम का ही अनुभव कर रहा हो। एक बार यदि शीर्षासन पर अधिकार प्राप्त कर लिया हो तो इसे आप प्रारम्भ में ही इस पुस्तक में दिये हुए अनुक्रम के अनुसार कर सकते हैं।

(२०) यदि आप योगासनों से शीघ्र एवं पूर्ण लाभ उठाना चाहते हैं तो नियमितता सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व है।

४. खड़े हो कर किये जाने वाले प्रारम्भिक आसन

१. ताड़ासन

(पर्वतासन अथवा खड़े होने की आकृति)

यह खड़े हो कर किये जाने वाले सभी आसनों का आधार है। खड़े होने की स्थिति में इसे विश्राम हेतु मानना चाहिए।

विधि

पैरों को मिला कर तथा पैर के अँगूठों, एड़ियों और घुटनों को एक-दूसरे से स्पर्श कराते हुए सीधे तन कर खड़े हो जायें। हाथ की उँगलियों को जाँघ की मांसपेशियों के बगल में फैलाये रखें। सीना आगे को ताने रखें।

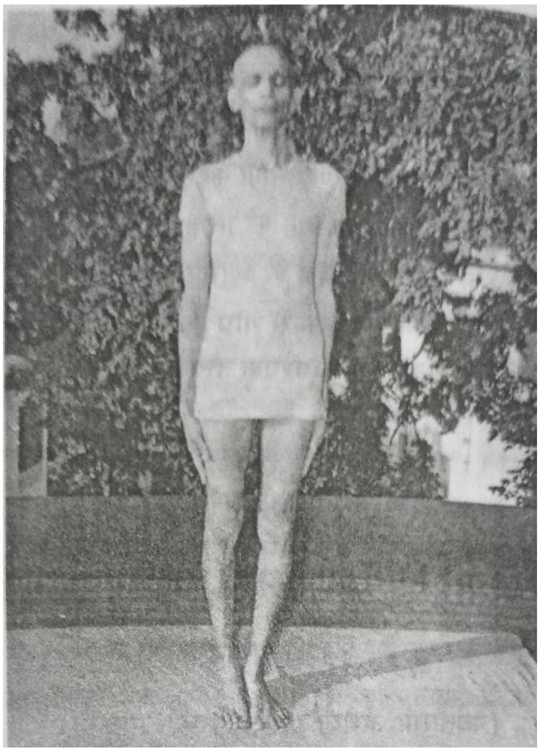

शरीर का समस्त भार समान रूप से एड़ियों और पादांगुलियों पर रहे। श्वसन-क्रिया सामान्य और धीमी रहे। अपने नेत्र बन्द कर लें। सभी बाहय ध्वनियाँ किसी रुकावट के बिना श्रवण करें और प्रकृति से एक (समरस) हो जायें।

लाभ

दोनों पैरों की उँगलियों और एड़ियों पर भार समान वितरित हो जाने से आसनकर्ता शरीर में हलकापन अनुभव करेगा। शरीर में प्राण का प्रभाव समान होने के कारण मस्तिष्क शान्ति प्राप्त कर लेता है।

२. त्रिकोणासन

त्रिकोणासन में मेरुदण्ड का झुकाव पार्श्वीय होता है, जब कि सूर्यनमस्कार में उसका झुकाव आगे और पीछे की ओर होता है। इस प्रकार खड़े हो कर किये जाने वाले इन आसनों का अभ्यास करने से पीठ की रीढ़ अधिक लचीली हो जाती है। लचीलापन युवावस्था का लक्षण है।

विधि

ताड़ासन में खड़े हो जायें। अपने पैरों को दो से ढाई फुट तक की दूरी पर अलग-अलग रखें। शनैः-शनैः हथेलियों को नीचे भूमि की ओर रख कर दोनों हाथों को कन्धे के समतल तक शनैः-शनैः फैलायें और उनको

पृथ्वी के समानान्तर रखें। धीरे-धीरे श्वास छोड़ें और गरदन दाहिनी ओर मोड़ दें तथा दाहिनी हथेली से दाहिने पैर के टखने के पास पृथ्वी को स्पर्श किये रहने का प्रयत्न करें। इस पूरे समय में पैरों को बिना झुकाये सीधे तने हुए रखें। पूरी हथेली पैर के पंजे के ऊपर विश्राम करती हुई रखी जा सकती है। बायाँ हाथ शिर के ऊपर फैला हुआ और भूमि के समानान्तर रखें। दृष्टि आगे की ओर करें। प्रारम्भ में कुछ सेकण्डों तक सामान्य श्वसन के साथ इस आकृति को बनाये रखें, फिर शनैः-शनैः एक मिनट तक बढ़ा दें। इस आसन में पूरे समय रीढ़ पर मन एकाग्र किये रहें। बायें हाथ को धीरे-धीरे अपनी पूर्व-स्थिति पर ले आयें। दाहिने हाथ को भूमि से उठायें और साथ ही गरदन सीधी करें तथा पैरों को पास ला कर मिला दें और ताड़ासन में सीधे खड़े हो जायें।

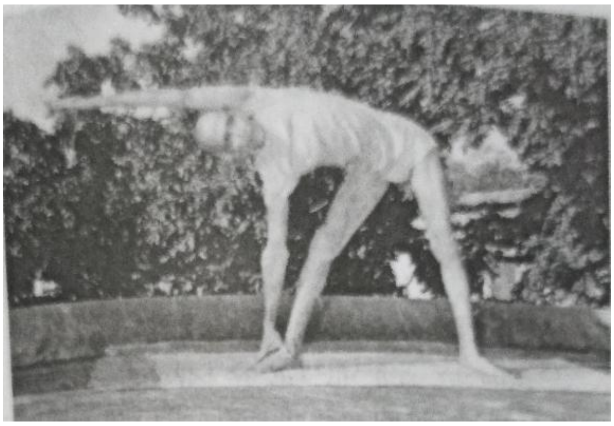

दो या तीन गहरे श्वास ले कर गरदन को बायीं ओर मोड़ कर या झुका कर पूर्वोक्त को दोहरायें।

लाभ

यह आसन पैरों, हाथों और कमर की कठोरता को दूर, पैरों की अल्प विकृति या विरूपता का सुधार और पृष्ठशूल तथा ग्रीवा की मोच का निवारण और वक्षःस्थल को विकसित करता है।

नोट : खड़े हो कर किये जाने वाले इन आसनों को और सूर्यनमस्कार के अभ्यास को सामान्य स्वास्थ्य वाले युवा एवं वृद्ध सभी बिना किसी आयु-प्रतिबन्ध के कर सकते हैं।

३. सूर्यनमस्कार

सूर्यनमस्कार अथवा सूर्य को प्रणाम करने के आसनों का अभ्यास प्रातः बड़े तड़के अथवा सायं सूर्याभिमुख हो कर किया जाता है। सूर्य स्वास्थ्य एवं दीर्घ आयुष्य के देवता मान जाते हैं। सूर्यनमस्कार के व्यायाम में भारतीय ऋषियों की प्रतिभा ने एक अद्वितीय पद्धति का विकास किया है जो संयुक्त रूप से शरीर, मन एवं आत्म-चेतना की उन्नति को पूर्ण संश्लेषण निष्पन्न करती है। भारतीय ऋषि ने अपनी अन्तर्ज्ञानमयी

अन्तर्दृष्टि से जनमानस के स्वभाव में बड़ी बुद्धिमत्ता के द्वारा इस सर्वतोमुखी एवं आत्म-संस्कृति की अप्रतिम पद्धति को प्रत्येक मनुष्य के नित्यकर्म में पिरो दिया है।

यहाँ इस विश्व में एकमात्र शरीर और मन का सुसामंजस्यपूर्ण विकास ही मनुष्य को उसकी इच्छाओं की पूर्ति और सफल एवं सुखी जीवन-यापन में सक्षम बना सकता है। व्याधिग्रस्त शरीर मन को (अध्यात्म के) उच्चतम क्षेत्र में उड़ान भरने में रुकावट डालने में एक भारी अवसादकारी भार का कार्य करता है। एक उत्तम सुगठित शरीर चाहे बलिष्ठ एवं स्वस्थ हो; किन्तु यदि वह अविकसित एवं व्याधिग्रस्त मन को ही आश्रय देने का कार्य करता है तो वह हानिकारक अधिक होता है, किसी को लाभदायक नहीं होता। इसी प्रकार एक उत्तम शरीर और सतर्क मन, जिसकी अन्तश्चेतना पूर्णतया प्रसुप्त हो, बिना नींव की एक मनोहर कोठी के समान है जो किसी भी क्षण धराशायी हो सकती है। शरीर, मन एवं आत्म-चेतना का सम्पूर्णतया सामंजस्यपूर्ण विकास ही व्यक्ति को पूर्ण बनाता है। सूर्यनमस्कार इस सामंजस्यपूर्ण विकास को प्राप्त कराता है।

सूर्यनमस्कार योगासनों और प्राणायाम की मिश्रित प्रक्रिया है । विद्यार्थियों के अधिक जटिल एवं क्लिष्ट यौगिक आसनों और प्राणायाम के अभ्यास करने से पूर्व उनके मेरुदण्ड तथा शरीर की मांसपेशियों को कुछ लचीलापन प्राप्त करना चाहिए। यह सूर्यनमस्कार का व्यायाम उदरीय वसा को घटाता, मेरुदण्ड और शरीर के अंग-प्रत्यंग में लचीलापन लाता और श्वसन-क्षमता को बढ़ाता है।

इसमें रीढ़ की बारह अवस्थितियाँ होती हैं। प्रत्येक अवस्थिति विभिन्न अस्थि-रज्जुओं को फैलाती और रीढ़ वाले अंगों में भिन्न-भिन्न गतियाँ देती है। इनमें श्वास को गहराई से लेते हुए (पूरक) तथा श्वासोच्छ्वास (रेचक) करते हुए और कुछ स्थितियों में थोड़ा कुम्भक करते हुए पृष्ठवंश को आगे तथा पीछे की ओर बारी-बारी से झुकाया जाता है। जब कभी शरीर आगे को झुकाया जाता है तो उदर और उरः प्राचीर का संकुचन श्वास को बाहर फेंकता है। जब शरीर पीछे को मुड़ता है तो वक्षःस्थल विस्तृत होता है और गम्भीर अन्तःश्वसन स्वतः होने लगता है। इस प्रकार शरीर लचीला हो जाता है और फुफ्फुस का सम्पूर्णांग कार्य प्रारम्भ कर देता है, परिणामतः सही श्वसन-क्रिया होती है। इसके अतिरिक्त उससे हाथ-पैर की मांसपेशियों का सरल व्यायाम होता है और रुधिर का सुसंचार भी सुनिश्चित रहता है। साथ ही सूर्य की जीवनदायिनी रश्मियाँ जो कि स्वेद के साथ विष का शोषण करती हुई एवं रुधिर-परिसंचरण को अनुप्राणित करती हुई तथा मानव-जीवन-रचना को जीवन प्रदान करती हुई-जीवन जो कि केवल सूर्य ही प्रदान कर सकता है-मनुष्य-शरीर पर पड़ती है। कठोर हाथ, पैर एवं पृष्ठवंश वाले मनुष्य के लिए खोया हुआ लचीलापन वापस लाने के लिए सूर्यनमस्कार का व्यायाम एक वरदान है।

विधि

सावधानी : इन सभी आकृतियों को करते समय शरीर के अवयवों की गति तथा श्वसन-क्रिया बहुत ही धीमी और तालबद्ध होनी चाहिए। शरीर के किसी अवयव में आकस्मिक झटके और जिससे फुफ्फुसों पर तनाव पड़े ऐसे तेजी से लगातार गम्भीर श्वास लेने तथा छोड़ने और भीतर रोकने का पूर्णतया परिहार करना चाहिए।

आकृति संख्या १ : सूर्य की ओर मुँह करें। दोनों हाथ (प्रणाम की मुद्रा में) जोड़ें। हथेलियों को परस्पर मिला कर दोनों अँगूठों से मध्य वक्षःस्थल स्पर्श करते हुए, पैरों को परस्पर मिला कर सीधे खड़े हो जायें।

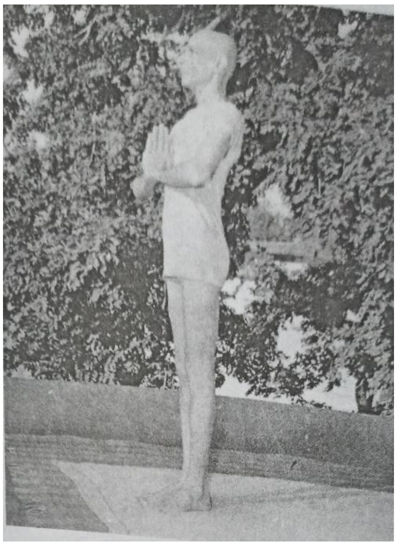

आकृति संख्या २ : धीरे-धीरे श्वास भीतर लें। साथ ही, हाथों को शिर के ऊपर उठायें। पीछे की ओर झुकें।

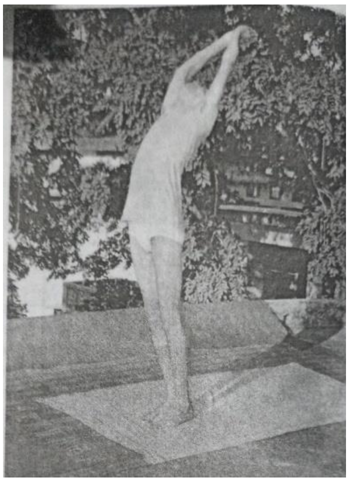

आकृति संख्या ३ : धीरे-धीरे श्वास निकालें और आगे को तब तक इतना झुकते जायें जब तक कि हथेलियाँ पैरों की पंक्ति में समतल न रख ली जायें। बिना पैरों को झुकाये, उनको सीधा रखते हुए, अपने मस्तक से घुटने स्पर्श करें। प्रारम्भ में ऐसा करने में घुटनों में कुछ झुकाव आ सकता है; किन्तु कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् पैर सीधे रखे जा सकेंगे।

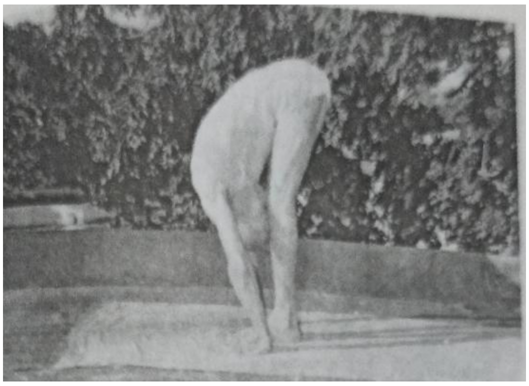

आकृति संख्या ४ : धीमी एवं गहरी श्वास लेने के पश्चात् दाहिने पैर को शरीर से अधिकतम पीछे ले जायें। हाथों और दायें पैर को भूमि पर बिना हिले दृढ़ता से रखें। शिर उठायें और सामने देखें। बायाँ घुटना दोनों हाथों के मध्य में रहना चाहिए।

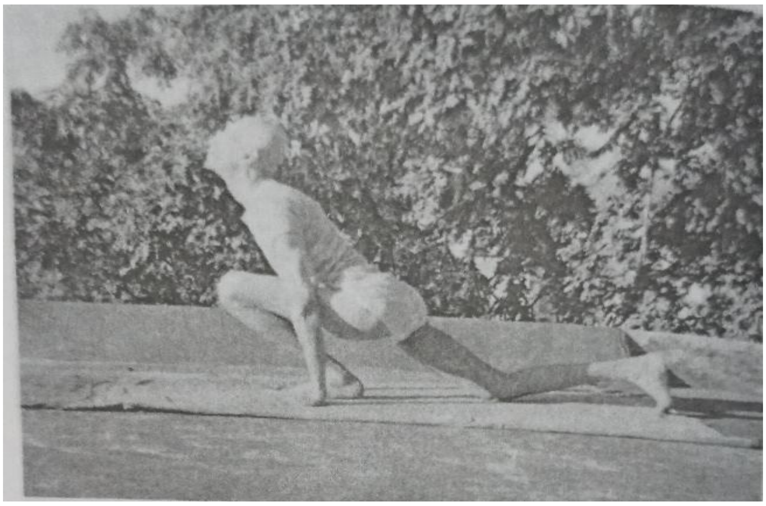

आकृति संख्या ५ : श्वास रोक लें। बायाँ पैर पीछे और दाहिना पैर बायें पैर के समानान्तर करें। इस प्रकार शरीर को एक सीधी रेखा-जैसा बना लें। शरीर का सम्पूर्ण भार हाथों और पैरों की उँगलियों पर रहना चाहिए।

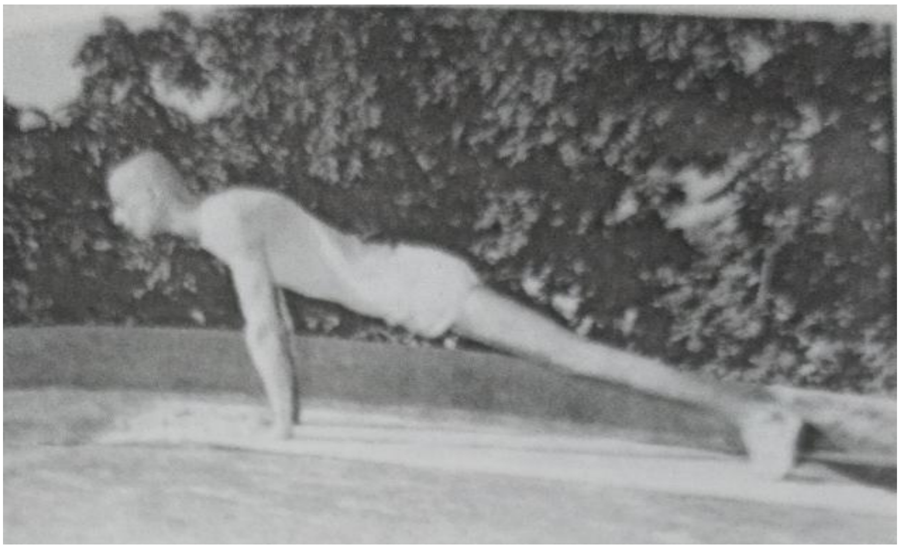

आकृति संख्या ६ : श्वास निकालें। शरीर को धीरे-धीरे इस प्रकार नीचे लायें कि केवल आठ अवयव-पैर के दो अँगूठे, दो घुटने, दो हाथ, वक्षःस्थल और मस्तक-भूमितल का स्पर्श करें। उदर-प्रदेश कुछ उठा हुआ रखना है।

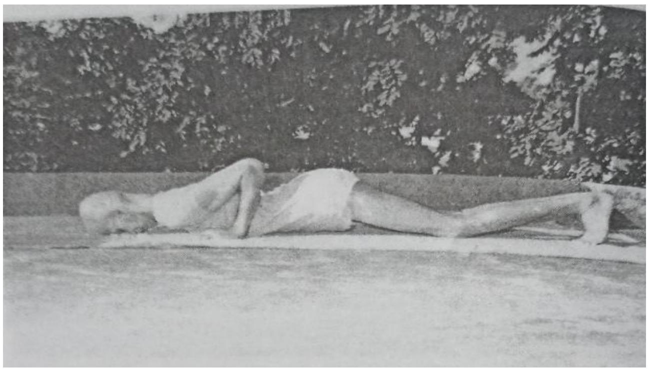

आकृति संख्या ७ : श्वास लेने के साथ-साथ अपना शिर शनैः-शनैः ऊपर उठायें और रीढ़ को यथासम्भव पीछे की ओर मोड़ें।

आकृति संख्या ८ : श्वास निकालें, अपना शिर धीरे-धीरे नीचे लायें और शरीर को उठायें। पैरों की उँगलियाँ और हाथ भूमितल पर टिके हों।

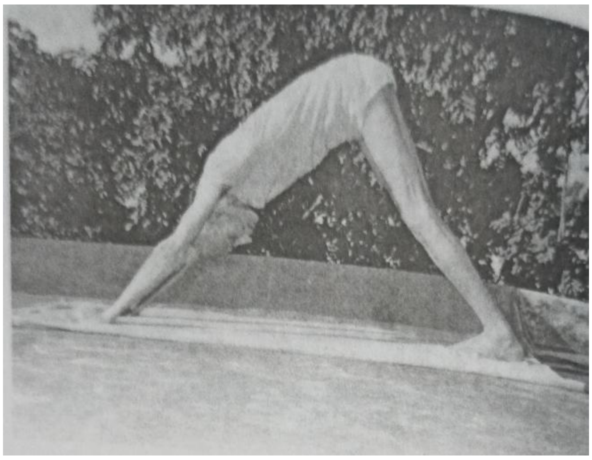

आकृति संख्या ९ : श्वास अन्दर लें और बायें पैर को हाथों के समतल लायें। दक्षिण पैर और घुटने को भूमि का स्पर्श करना चाहिए। आगे दृष्टि रखें (यह आकृति संख्या ४ के समान ही है)।

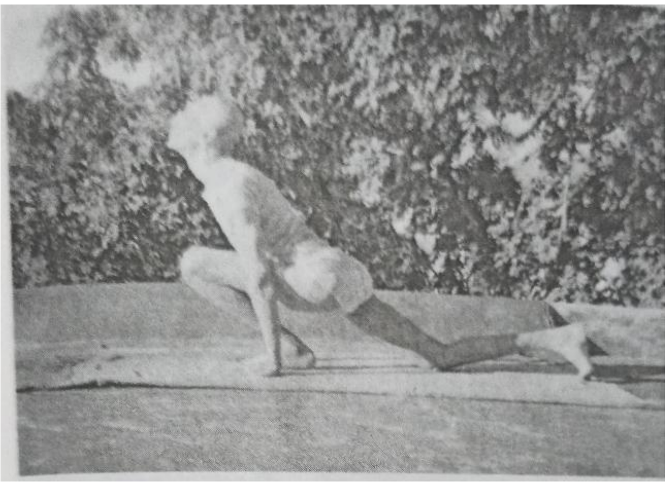

आकृति संख्या १० : श्वास छोड़ें। दाहिना पैर भी आगे ले जायें और आकृति संख्या ३ पर वापस आ जायें।

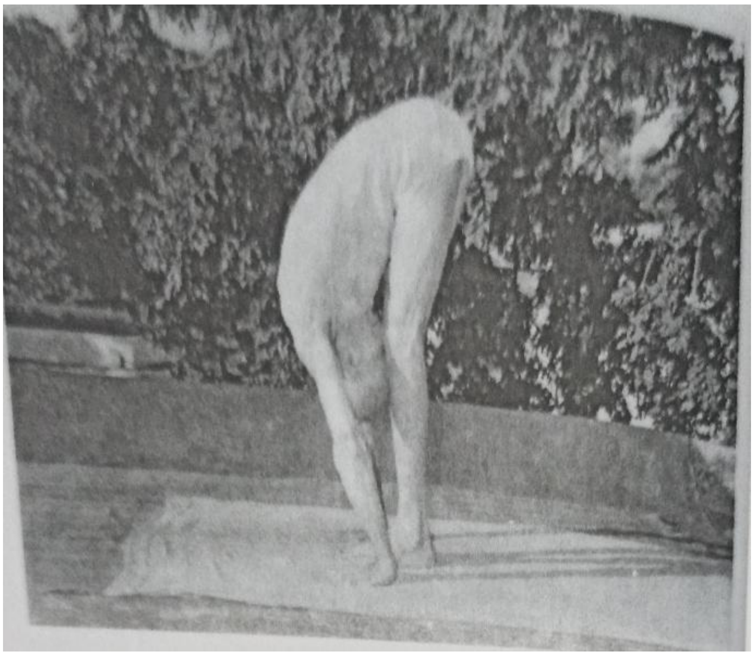

आकृति संख्या ११ : श्वास लें और हाथों को शिर के ऊपर ले जायें तथा आकृति संख्या २ की तरह पीछे की ओर झुकें।

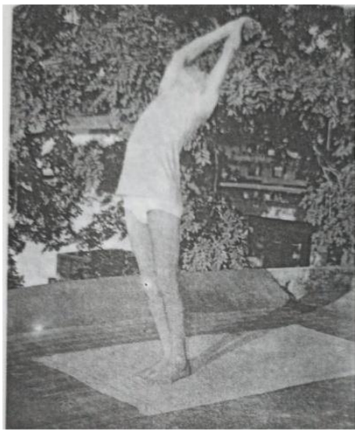

आकृति संख्या १२ : शनैः-शनैः अपने हाथों को आकृति संख्या १ की भाँति ले जायें; साथ hat delta*T श्वास छोड़ें और ताड़ासन में विश्राम करें। यह एक सूर्यनमस्कार हुआ।

नोट : सूर्यनमस्कार की दूसरी आवृत्ति का अभ्यास करते समय बायें पैर से प्रारम्भ करें, फिर तीसरी आवृत्ति में दायें पैर से। इसी प्रकार हर आवृत्ति में प्रारम्भ करते समय दायें-बायें का क्रम बदलते रहें। प्रतिदिन १२ आवृत्तियाँ की जा सकती हैं।

बारह सूर्यनमस्कार पूरे कर लेने पर पीठ के बल भूमि पर चित लेट जायें और अँगूठे से ले कर मस्तक तक के प्रत्येक अवयव को एक-एक करके विश्राम करने दें। इसे शवासन (शव की आकृति) कहते हैं। प्रारम्भ में तीन या चार सूर्यनमस्कार करने के पश्चात् यदि अभ्यासकर्ता थकावट अनुभव करे तो वह वहीं रुक सकता है और शनैः-शनैः (प्रतिदिन एक अथवा प्रति दो दिन में एक) संख्या बढ़ायें। सभी समय यह सावधानी रखें कि किसी तरह भी हो, शरीर के किसी भी अंग पर अत्यधिक थकान न होने पाये। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी क्षमता के अनुसार संख्या बढ़ायी जा सकती है। ऐसे भी मनुष्य हैं जो एक बार में एक सौ आठ (१०८) सूर्यनमस्कार बिना अधिक थकान के कर सकते हैं।

जो आध्यात्मिक अथवा धर्मप्रवण हों, उनके लिए अच्छा होगा कि वे निम्नांकित अतिरिक्त निर्देशों का भी पालन करें-

सूर्यनमस्कार करने से पूर्व अभ्यासकर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वर के निम्न स्तोत्र का पाठ कर सकता है :

ॐ सूर्य सुन्दरलोकनाथममृतं वेदान्तसारं शिवं
ज्ञानं ब्रह्ममयं सुरेशममलं लोकैकचित्तं स्वयम्।
इन्द्रादित्यनराधिपं सुरगुरुं त्रैलोक्यचूडामणिं
ब्रह्माविष्णुशिवस्वरूपहृदयं वन्दे सदा भास्करम्।।

अर्थ : मैं सदा सूर्य की उपासना करता हूँ जो विश्व के सुन्दर स्वामी, अमर, वेदों के सारतत्त्व और कल्याणकारी हैं; परम ज्ञानवान्, ब्रह्मस्वरूप, देवों के प्रभु, सदा पवित्र तथा स्वयं विश्व के चित्स्वरूप हैं; इन्द्र, देवताओं तथा मनुष्यों के स्वामी, देवों के गुरु और त्रिलोक के चूड़ामणि हैं; ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूपों के हृदय हैं और प्रकाशदाता हैं।

फिर प्रत्येक नमस्कार के साथ मन-ही-मन भगवान् सूर्य के बारह नामों को क्रमशः एक-एक करके दोहरायें। ये बारह नाम हैं :

(१) ॐ मित्राय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो सभी को स्नेहमय है)।

(२) ॐ रवये नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो परिवर्तन का कारण है)।

(३) ॐ सूर्याय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो क्रिया का संचालक है)।

(४) ॐ भानवे नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो प्रकाश का विस्तारक है)।

है)। (५) ॐ खगाय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो आकाशचारी

(६) ॐ पूष्णे नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो सबका पोषणकर्ता है)।

(७) ॐ हिरण्यगर्भाय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो सर्व वस्तु धारणकर्ता है)।

(८) ॐ मरीचये नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो रश्मियों से युक्त है)।

(९) ॐ आदित्याय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो अदिति का पुत्र है)।

(१०) ॐ सवित्रे नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो सर्वोत्पादक

(११) ॐ अर्काय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो पूजा के योग्य है)।

(१२) ॐ भास्कराय नमः (उस ईश्वर को नमस्कार है जो प्रकाश का कारण-प्रदाता- है)।

इस भूग्रह में सूर्य सर्वाधिक प्रकाशमान और जीवन-प्रदाता होने से यह अदृश्य ईश्वर का दृश्य प्रतिनिधि है। अधिकतर व्यक्तियों के लिए इन्द्रियगम्य पदार्थ या विचार के बिना भावातीत परम ब्रह्म अचिन्त्य है। उनके लिए सूर्य पूजा एवं ध्यान के लिए सर्वोत्कृष्ट पदार्थ का रूप धारण करता है।

इस प्रकार सूर्यनमस्कार शरीर, मन एवं आत्म-चेतना की सुसर्वांगीण उन्नति के लिए नींव का कार्य करता है जो प्रत्येक मानव के लिए परमावश्यक है।

५. शवासन या मृतासन

(विश्राम आकृति)

अब आप पूर्णतया विश्राम (शिथिलीकरण) करने जा रहे हैं। जो-कुछ भी थकान, तनाव या परिश्रम शरीर में हो उसे इस आसन द्वारा हटाना है जिसको शवासन कहते हैं।

शवासन में ध्यान का आसन सम्मिलित है। यह केवल शरीर को ही नहीं, वरन् मन को भी विश्राम प्रदान करता है। यह उपशम, आराम और सुख प्रदाता है। मांसपेशियों के व्यायाम में विश्राम एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

विधि

पीठ के बल लेट जायें। हथेलियों का रुख ऊपर (आकाश) की ओर करते हुए अपने हाथों को अपनी जंघाओं के बगल में रखें। पैरों को इस प्रकार अलग-अलग रखें कि वे एक-दूसरे को स्पर्श न करें। अपने नेत्रों को बन्द कर लें।

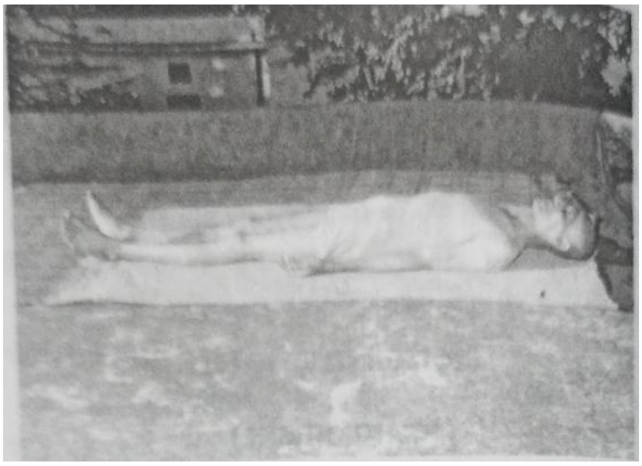

अपने दोनों पैरों की उँगलियों पर चित्त एकाग्र करें। धीरे से उनको झुका दें और तब शिथिल हो जायें। अब अपने-आपको शरीर के उस उपांग (उँगलियों) से मानसिक विच्छेद करें अर्थात् आत्म-सुझाव दें : 'मेरा मन पैर की उँगलियों के विचार से रहित हो जाये।' अनुभव करें कि पैर की सभी उँगलियाँ शीतल और पूर्णतया शिथिल होती जा रही हैं। फिर एड़ियों पर मन एकाग्र करें। पैरों का भारी भार उन पर टिका है। एड़ियों को ढीला छोड़ दें और

उनको भार से मुक्त करें तथा अनुभव करें कि वे शीतल और शिथिल हो रही हैं। पिण्डली की मांसपेशियों पर चित्त एकाग्र करें। उन्हें शिथिल करें। अनुभव करें कि पिण्डली से ऊपर तक दोनों पैर पूर्णतया शिथिल हैं। फिर घुटनों पर ध्यान केन्द्रित करें जो केवल भारी अस्थियाँ हैं, और कुछ नहीं। पैरों का भार उन पर टिका हुआ है। घुटनों को शिथिल कर दें। अब अनुभव करें कि घुटनों तक दोनों पैर आराम में हैं और शीतल हो गये हैं। जंघाओं, भारी मांसपेशियों तथा अस्थियों पर ध्यान दें और दोनों जंघाओं को शिथिल कर दें। फिर कूल्हे पर, भारी अस्थियों और मांसपेशियों पर चित्त एकाग्र करें। शरीर का सम्पूर्ण भार उन पर आधारित होगा। कूल्हों को शिथिल कर (विश्राम) दें। अनुभव करें कि कूल्हे तक पूरे शरीर के निम्नांग पूर्णतया विश्श्राम में हैं। एक बार किसी विशेष अंग को विश्राम दें तो शरीर के उस अंग पर आपको कोई नियन्त्रण नहीं रखना चाहिए। अब मेरुदण्ड पर चित्त एकाग्र करें। शरीर का सम्पूर्ण भार इस पर आधारित होगा। रीढ़ की अस्थियों को एक-एक करके शिथिल कर दें। शनैः-शनैः ग्रीवा तक शिथिल कर दें। उदर पर चित्त एकाग्र करें और उदर-मांसपेशियों को पूर्णतया शिथिल छोड़ दें। धीमी श्वसन-क्रिया के कारण पेट में धीमी चाल अनुभव करें। वक्षःस्थल पर चित्त एकाग्र करें। अनुभव करें कि वक्षःस्थल का सम्पूर्ण भार पसली की हड्डियों पर आधारित है। पसली की हड्डियों और वक्षःस्थल को ढीला छोड़ दें। धीमी श्वास लें और फेफड़ों की सुव्यवस्थित गति का अनुभव करें। अनुभव करें कि शिथिलीकरण के कारण सम्पूर्ण वक्षःस्थल-प्रदेश बहुत हलका हो रहा है। कन्धों पर चित्त एकाग्र करें। शरीर का भारी भार कन्धों के पश्च भाग पर आश्रित होगा। कन्धों, द्विशिर-पेशियों, कोहनियों, प्रवाहुओं, कलाइयों और उँगलियों को शिथिल (विश्राममय) कर दें। अनुभव करें कि दोनों हाथ पूर्ण विश्राम में हैं और शीतल हो गये हैं। अब ग्रीवा पर ध्यान एकाग्र करें। ग्रीवा पर शिर का भारी भार है। ग्रीवा को शिथिल कर दें। धीरे से अपने शिर को दाहिनी ओर घुमायें। धीरे से पुनः इसे घुमायें और वापस केन्द्र, पर लायें। अपना शिर बायीं ओर घुमायें और धीरे से लुढ़का कर वापस केन्द्र पर लायें। अपनी ग्रीवा को पूर्णतया शिथिल कर दें। अपने शिर पर मन एकाग्र करें। शिर को शिथिल कर दें। अपने चेहरे पर ध्यान दें और मुख की मांसपेशियों को शिथिल कर दें। अधरों पर ध्यान दें। अधर-पुटों को धीरे से अलग करें और उनको शिथिल करें। अपनी दोनों दन्तावलियों को अलग करें और उनको शिथिल करें। अपनी जिह्वा को तनिक ढीला करें, फिर इसको शिथिल करें। हलके से मुस्करायें और कपोलों को ढीला छोड़ दें। नासारन्ध्रों पर ध्यान दें। धीरे-धीरे श्वास लें और नासारन्ध्रों से वायु की धीमी गति का अनुभव करें। नासारन्ध्रों को शिथिल करें। नेत्र-भाग पर ध्यान दें तथा शनैः-शनैः और हलके से नेत्रों को आंशिक रूप से उन्मीलित करें। आकाश (या छत) को देखें और फिर धीरे से अपने नेत्र बन्द कर दें। पलकों के पीछे स्थित चक्षु-गोलकों को भीतर ही धीरे से नीचे की ओर करें। चक्षु-गोलकों को शिथिल कर दें। नेत्रों को पूर्ण शान्ति में विश्राम लेने दें। भौहों को शिथिल करें। अनुभव करें कि सम्पूर्ण नेत्र-भाग पूर्णतया विश्राम में है। मस्तक पर ध्यान दें। अन्य सभी कार्यक्रम विस्मरण करें। मन में कोई विचार न रहे। अनुभव करें कि सम्पूर्ण मस्तक-भाग विश्राम में है और शीतल हो गया है। कानों पर ध्यान दें। अप्रतिरुद्ध ध्वनियों को श्रवण करें; ध्वनियों की प्रकृति, कारण आदि पर विचार न करें। ध्वनियों के साक्षी मात्र रहें। अपने शिर के शीर्ष भाग पर मन एकाग्र करें। शीर्ष पर तनिक गरमाहट अनुभव करें। शिर को पूर्णतया शिथिल करें। अनुभव करें कि शरीर का भारी भार भूमण्डल पर विश्राम कर रहा है। शरीर को पूर्णतया ढीला छोड़ दें। श्वास शनैः-शनैः लें और निकालें। उरःप्राचीर को विश्राम दें। अनुभव करें कि शरीर

उत्तरोत्तर हलका हो रहा है और यह वायु में या स्वच्छ आकाश में तैर या उतरा रहा है । यह भी अनुभव करें कि यह आकाश में गतिशील 'चेतन-केन्द्र' के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। यही हमारा सत्स्वरूप है। इस आकृति में कुछ क्षणों तक विश्राम करें।

अब धीरे से श्वास लें और अनुभव करें कि स्वच्छ प्राण-वायु शरीर के समस्त अंगों को नवजीवन प्रदान करती हुई प्रवेश कर रही है। श्वास निकालें और अनुभव करें कि समस्त विकार शरीर के बाहर जा रहे हैं। एक बार पुनः श्वास लें और अनुभव करें कि स्वच्छ प्राण-वायु प्रवेश कर रही है और शरीर के समस्त रुधिर-कोशों को नवजीवन प्रदान कर रही है और तब श्वास बाहर निकालें और अनुभव करें कि समस्त विकार बाहर निकल रहे हैं।

गहरी श्वास लेने के साथ दोनों हाथों को उठायें और उन्हें शिर से ऊपर भूमि पर रखें। अपने शरीर को पादांगुलियों से ले कर हाथों के छोर तक फैला दें। पादांगुलियों से ले कर हाथों तक सम्पूर्ण शरीर को दाहिनी ओर घुमायें। शरीर फैलायें और हाथों को देखें। शरीर को पुनः पूर्व-स्थिति पर वापस लायें। यही प्रक्रिया बायीं ओर दोहरायें। धीरे से हाथों को जंघाओं के पार्श्व में लायें। धीरे से उठें और कुछ सेकण्ड बैठे रहें। फिर अपनी पादांगुलियों पर खड़े हो जायें और हाथों को शिर के ऊपर पूर्णतया फैलायें। हाथों को धीरे-धीरे नीचे लायें और विश्राम करें। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया से शवासन बनता है।

६. शीर्षासन

(विपरीतकरणीमुद्रा)

विधि

चौपरत कम्बल बिछा कर उसके सामने घुटनों के बल बैठ जायें। अपने हाथों की हथेलियों को चषकाकार बनाते हुए उँगलियों को गुम्फित करें। छोटी उँगलियों को ऐसा ठीक बैठायें कि दोनों हथेलियाँ कम्बल पर समान रूप से रह सकें। छोटी उँगलियों को कम्बल का स्पर्श कराते हुए हाथों को कम्बल पर रखें। अब कोहनियों को मिलाने वाली पंक्ति ही कम्बल पर हाथों की स्थिति द्वारा निर्मित त्रिभुज का आधार होगी। दोनों कोहनियों के मध्य का स्थान अपने वक्षःस्थल की चौड़ाई के अन्दर ही होना चाहिए।

अब अपने शिर का शीर्ष भाग कम्बल पर रखें जिससे कि आपके शीर्ष का पश्च भाग चषकाकार हथेलियों को स्पर्श करे। घुटनों को भूमि से उठायें और फर्श पर पादांगुलियाँ रखे रहें। शिर की स्थिति दृढ़ रखते हुए पादांगुलियाँ और जाँघे शिर के पास लाते जायें। घुटनों को शरीर के पास ले आयें और धीमे से फर्श से अलग

करके दोनों पैरों की उँगलियों को एक-साथ उठायें और कुछ क्षणों तक सन्तुलित रखने का प्रयत्न करें। जब सन्तुलन स्थिर हो जाये और रीढ़ सीधी तन जाये तब घुटनों को सीधा कर दें तथा शिर नीचे और पैरों को ऊपर करते हुए, धीरे-धीरे पूरे शरीर को एक पंक्ति में लाते हुए दोनों पैरों को ऊपर फैला दें। जब इस आकृति में हों तो नासिका से धीमी और गहरी श्वास-प्रश्वास लेने की प्रक्रिया करें तथा शिर के शीर्ष भाग पर अपना मन केन्द्रित करें। इस आकृति को बिना किसी कष्ट के जितनी देर तक बनाये रख सकें, बनाये रखें। १०-१५ सेकण्ड से प्रारम्भ करके अवधि को शनैः-शनैः तीन मिनट तक बढ़ायें।

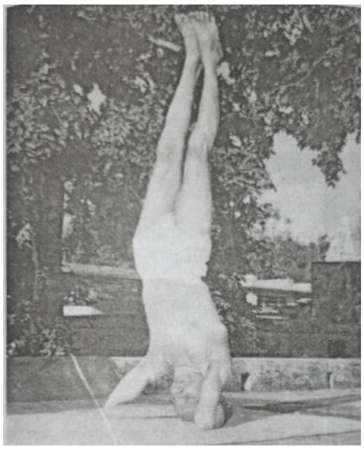

धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें तथा पैरों को घुटनों से मोड़ते हुए नीचे करें। घुटनों को धीरे-धीरे शरीर के पास, आगे लायें और पादांगुलियों को फर्श का स्पर्श करने दें। फर्श पर पादांगुलियों सहित घुटने सीधे करें तथा रीढ़ की हड्डी सीधी करें। तब फर्श पर घुटनों को विश्राम करने दें और अपनी बँधी हुई, एक-दूसरे पर रखी हुई, मुट्ठियों पर मस्तक को रखते हुए आकृति को खोल दें। इस स्थिति में ३० सेकण्ड तक बने रहें और तब अपने पैरों पर (ताड़ासन) में ३० सेकण्ड तक खड़े हों। इससे एकाएक शिर से रुधिर का उलटा प्रवाह होने में रोक लग जायेगी।

कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् जब आपको सरलता एवं आराम अनुभव होने लगे तब अपने शरीर के शीर्ष भाग पर, सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ, चित्त एकाग्र करने का प्रयत्न करें।

इस आसन का अभ्यास व्यक्ति की क्षमता के अनुसार किया जा सकता है और दैनिक अभ्यास के लिए समय तीन मिनट से पाँच मिनट तक भिन्न-भिन्न हो सकता है।

नोट : प्रारम्भिक अभ्यासकर्ताओं को इस आसन पर अत्यधिक समय तक खड़े नहीं रहना चाहिए। शरीर को थकाने से बचें, जब आप किसी प्रकार की असुविधा (कष्ट) अनुभव करें तो सामान्य स्थिति में वापस आ जायें और विश्राम करें। अभ्यास के समय घुटनों और अँगूठों को सीधे किन्तु विश्राम में रखते हुए मन-ही-मन (काल्पनिक) शरीर का अवलोकन करें। हाथों को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि शरीर का समस्त भार शिर पर ही आधारित हो, न कि हाथों पर। प्रारम्भ में शिर में ताजे रुधिर का आकस्मिक भारी प्रवाह कुछ असामान्य

अनुभूतियाँ उत्पन्न करा सकता है। इन पर आप शनैः-शनैः विजय प्राप्त कर लेंगे और तब आप आराम का अनुभव करेंगे। जैसे ही आप प्रवीणता प्राप्त करेंगे, आप शरीर को बहुत हलका और आराममय अनुभव करेंगे।

लाभ

शीर्षासन का नियमित अभ्यास ग्रीवा, उदर-प्राचीरों तथा जाँघों को पुष्ट और शक्तिशाली बनाता है। इससे पृष्ठवंश स्वस्थ और बलवान् बनता है। इस आसन के नियमित अभ्यास से सभी शारीरिक कोशों के माध्यम से, विशेषतः उन भागों में जो हृदय के ऊपर हैं, स्वस्थ और शुद्ध रक्त का समुचित प्रवाह निरापद होता है और इस प्रकार उन (हृदय के ऊपर वाले) भागों को नवजीवन प्राप्त होता है। विचार-शक्ति भी बढ़ जाती है और इससे विचार-समूह अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। पीयूष (पिट्यूटरी) और शंकुरूप ग्रन्थियाँ समुचित रुधिर-पूर्ति पा जाती हैं जिससे सुस्वास्थ्य शरीर का वर्द्धन और जीवन-शक्ति की निश्चित रूप से उन्नति होती है। यह आसन निद्राहीनता, स्मरणहीनता और शक्तिहीनता से पीड़ित व्यक्तियों के लिए विशेष लाभदायक है। इस आसन का उचित और सही अभ्यास अत्यधिक कर्म-शक्ति तथा स्फूर्ति प्रदान करता है। फेफड़े जलवायु की दशाओं में परिवर्तनों का सामना करने की शक्ति को अर्जित कर लेते हैं। यह व्यक्ति को प्रतिश्याय, खाँसी, तुण्डिका-शोथ, दुर्गन्धयुक्त श्वास, हृदय की धड़कन आदि से मुक्त करता है। यह शारीरिक तापमान को ठीक करता है, कोष्ठबद्धता हटाता है और रुधिर-तत्त्वों को स्वस्थ करता है। नियमित तथा सही अभ्यास मन और शरीर का उचित तथा निर्दोष विकास भी निश्चित करता है। एकाग्रता की शक्ति भी बढ़ जाती है।

चेतावनी : उच्च एवं निम्न रक्तचाप, हृदय-रोगों, कर्ण-पूय, विस्थापित चक्षु-पटल अथवा अन्य पुराने नेत्र-रोगों से ग्रस्त रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए। पन्दरह वर्ष से कम आयु के बालकों को भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

७. सर्वांगासन

विधि

फर्श पर एक मोटा कम्बल बिछाइए। पैरों को फैला कर पीठ के बल इस प्रकार चित लेट जायें कि एड़ियाँ और घुटने परस्पर मिले हों, हाथ शरीर के पार्श्व में, पास ही रखे हुए हों तथा हथेलियों का रुख फर्श की ओर हो। धीरे-धीरे श्वास लें। साथ ही बिना घुटनों को मोड़े पैरों को उठायें। धीरे से धड़ को उठायें तथा कोहनियों को मोड़ कर इसको पृष्ठ भाग में (मध्य मेरुदण्ड में) हाथों का सहारा दें। रीढ़ की हड्डी सीधी अर्थात् फर्श पर लम्बवत् रखें। कन्धों का पृष्ठभाग, ग्रीवा तथा शिर के शीर्ष का पश्च भाग फर्श को स्पर्श करते रहें। चिबुक को वक्ष पर दृढ़तापूर्वक दबाये रखना चाहिए। जब आप मेरुदण्ड को खड़ा कर दें और आसन पर सन्तुलन स्थापित कर लें तब

शनैः-शनैः पैर की उँगलियों को ऊर्ध्वमुखी करते हुए पैरों को फैला दें। पैर, पीठ और मेरुदण्ड को सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ एक लम्बवत् सीधी पंक्ति में, विश्राम की स्थिति में खड़ा रखें।

कण्ठ पर चित्त एकाग्र करें जहाँ स्वच्छ रुधिर अधिक मात्रा में प्रवाहित हो रहा है, जो (कण्ठ की) अवटु और परावटु ग्रन्थियों के अन्तःस्राव को गति प्रदान करता है। यह सर्वाधिक महत्त्व का है।

धीरे-धीरे श्वास निकालें। बिना झटका दिये पैरों को नीचे करें और हाथों की स्थिति छोड़ दें। जब पैरों को अपनी पूर्व-स्थिति में नीचे ला रहे हों तो आपको भूमि से शिर नहीं उठाना चाहिए। धीमे से नीचे खिसकते हुए चित लेट जायें और कुछ मिनटों तक शवासन में विश्राम करें। इस आसन का समय दैनिक अभ्यास के लिए एक मिनट से तीन मिनट तक भिन्न-भिन्न हो सकता है।

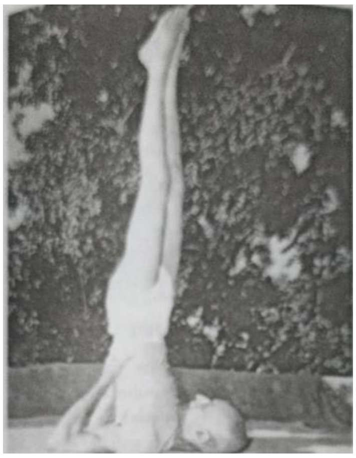

लाभ

इस आसन के अभ्यास के समय शरीर के प्रत्येक अंग का व्यायाम हो जाता है। अन्तःस्रावी प्रणाली से अवटु (कण्ठ की) और परावटु ग्रन्थियों की ओर रुधिर-संचार निर्देशित हो सकता है। ग्रीवा-प्रदेश की स्नायु और कन्ध की मांसपेशियों को लचीलापन प्रदान कर यह उनका प्रसारण कर देता है। यह रोगग्रस्त स्फीतशिराओं को सहायता प्रदान करता, पीठ और ग्रीवा की मांसपेशियों को सशक्त बनाता तथा हाथ की मांसपेशियों और शरीर को सम्पूर्णतया आरोग्य प्रदान करता है। यह अपशिष्ट द्रव्य निर्मित होने को रोकता तथा जीव-विष को हटाता है और शरीर के सम्पूर्ण रुधिर-संचार को नियमित करता है।

सावधानी : शीर्षासन की तरह ही।

८. मत्स्यासन

इस आसन को सर्वांगासन के पश्चात् तुरन्त करना चाहिए। इसका समय सर्वांगासन के समय का तृतीयांश निर्धारित किया गया है। यदि कोई सर्वांगासन तीन मिनट करता है तो उसे इसको एक मिनट करना चाहिए। अभ्यासकर्ता इस आसन में शीर्षासन और सर्वांगासन के कुछ लाभ प्राप्त करता है। सर्वांगासन में ग्रीवा-प्रदेश का झुकाव आगे की ओर होता है, जब कि इस आसन में ग्रीवा-प्रदेश का प्रसार पार्श्व की ओर होता है जिससे हृदय से स्वच्छ रक्त का प्रचुर मात्रा में प्रवाह मस्तिष्क की ओर, जहाँ पर पीयूष और शंकुरूप ग्रन्थियाँ अवस्थित हैं, हो सके। इस आसन के अभ्यास के समय फुफ्फुसों का शीर्ष भाग शरीर पर बिना श्रम डाले क्रिया करना प्रारम्भ कर देता है। यह साधारणतया केवल यथेष्ट शारीरिक परिश्रम से ही सम्भव हो सकता है।

विधि

फर्श पर बिछे हुए एक कम्बल पर पद्मासन में बैठें। कोहनियों का आधार लेते हुए धीरे-धीरे पीछे जायें। वक्ष और धड़ को उठाते हुए तथा ग्रीवा को पीछे मोड़ते हुए पीठ को धनुषाकार बनायें। शिर को पीछे खींचें और इसे इसके शीर्ष पर टिकायें। अपने हाथ उठायें तथा पैर के अँगूठों को पकड़ें और शनैः-शनैः हाथों से पैर के अगूंठों को खींचते हुए तथा शिर के शीर्ष की स्थिति को और पीछे की ओर दबाते हुए धीरे-धीरे धनुषाकार को बढ़ायें। सामान्य श्वास-प्रश्वास लेते हुए वक्ष, ग्रीवा, शिर के शीर्ष और मेरुदण्ड के नीचे के अन्तिम भाग पर ध्यान दें। इस आकृति को बीस सेकण्ड से एक मिनट अर्थात् सर्वांगासन के तृतीयांश समय तक बनाये रखें। कोहनियों पर सहारा लेते हुए पैर के अंगूठों की पकड़ को छोड़ दें और शिर के पिछले भाग को भूमि पर विश्राम दें। धीरे से उठें और पद्मासन पर बैठें। तथा एक-एक कर पैरों को खोल दें।

जब इस आसन में प्रवीणता प्राप्त कर लें तो इस आसन का समय शनैः-शनैः बढ़ा सकते हैं। इस आसन में रहते समय श्वास-प्रश्वास धीमी और गहरी रखें।

नोट : जो प्रारम्भिक अभ्यासकर्ता पद्मासन में बैठने की स्थिति में न हों वे अपने पैरों को फैला कर इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं। हथेलियाँ प्रारम्भ से अन्त तक जाँघों पर रखी रह सकती हैं।

लाभ

वक्ष और पृष्ठ-प्रदेश यथेष्ट विकसित हो जाते हैं और श्वसन-क्रिया अधिक पूर्ण हो जाती है। श्रोणीय सन्धियाँ अधिक लचीली हो जाती हैं। ग्रीवा को फैलाने के कारण अवटु ग्रन्थियाँ लाभान्वित होती हैं। श्वासनलियों से अति-संकुचन दूर हो जाता है। यह दमा के रोगियों को कुछ उपशमकारी होता है।

९. हलासन

विधि

हाथों को अपनी बगलों में और हथेलियों को भूमि पर रख कर पीठ के सहारे चित लेट जायें। अपने पैरों को परस्पर मिला कर रखें जिससे एक पैर का अँगूठा और एड़ी दूसरे पैर के अंगूठे और एड़ी को स्पर्श करें। पैरों को घुटनों से बिना मोड़े धीरे-धीरे यहाँ तक उठायें कि वे धड़ के साथ एक समकोण बन जायें। हाथों को भूमि पर रखे हुए नितम्ब और पृष्ठ के कटि-भाग को ऊपर उठायें और पैरों को शिर के परे फर्श पर नीचे लायें। ठुड्डी को वक्ष पर दबायें और नासिका से शनैः-शनैः श्वास लें तथा निकालें। अपनी हथेलियों, कलाइयों तथा हाथों को फर्श पर पट रखें। अपने घुटनों को उठायें और पैर की उँगलियों को यथासम्भव फैला दें। प्रारम्भ में धीमी, गहरी श्वास-प्रश्वास के साथ कुछ सेकण्ड तक इस आसन में रहें। सम्पूर्ण मेरुदण्ड तथा उदर पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। ग्रीवा-प्रदेश को शिथिल करें। तब धीरे-धीरे एक-एक अंश कर पैर ऊपर की ओर उठायें और उनको शनैः-शनैः पीठ के बल चित लेटने की पूर्व-आकृति में ले आयें। अपनी क्षमता और सुविधा के अनुसार धीरे-धीरे एक से तीन मिनट तक समय बढ़ायें।

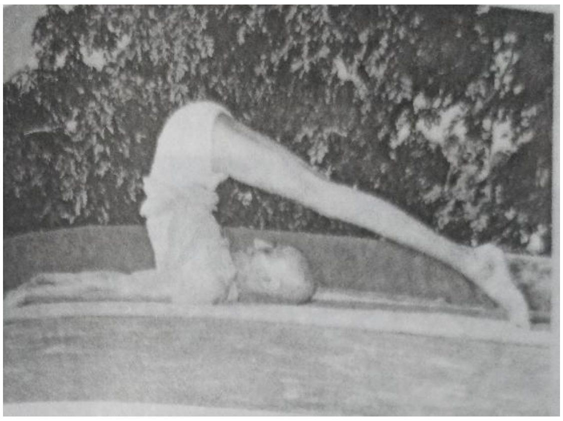

रूपान्तर : अपने घुटनों को उठाने और पैर की उँगलियों को यथासम्भव फैलाने के पश्चात् आप हाथों को पैरों की ओर ले जा कर उनकी उँगलियों को पकड़ सकते हैं।

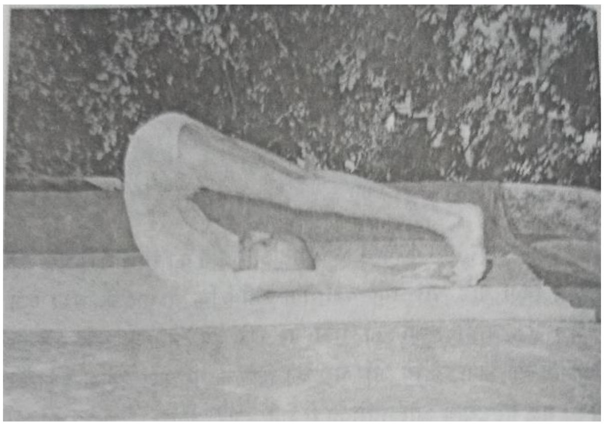

लाभ

पीठ एवं रीढ़ की हड्डी तथा कन्धों की विभिन्न व्याधियाँ तथा जटिलताएँ और पेट तथा कोहनियों की पीड़ा इससे दूर हो जाती है। मेरुदण्ड लचीला तथा दृढ़ हो जाता है। उदरीय पेशियों में नवजीवन का संचार होता है। उदरीय अंगों, मेरुदण्ड-प्रदेश, पीठ एवं ग्रीवा में रुधिर का संचार होता है। यह आसन उदर, जाँघों और नितम्बों के मोटापे की अधिकता को क्षीण करता है।

१०. पश्चिमोत्तानासन

विधि

तह किये हुए कम्बल पर दोनों पैर फैला कर बैठ जायें और दोनों हाथ घुटनों पर रखें। धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें, आगे की ओर झुकें और घुटनों को बिना मोड़े पैर के अँगूठों को पकड़ लें। घुटनों को स्पर्श करने के लिए अपना शिर नीचे झुकायें। कोहनियों को भूमि पर टिकायें। इस आसन में कुछ सेकण्ड तक टिके रहें। धीरे-धीरे समय की अवधि बढ़ायें। पैरों की उँगलियों को छोड़ दें और श्वास भीतर लेते हुए धीरे-धीरे बैठने वाली स्थिति में आ जायें। कुछ धीमी, गहरी श्वास लें और धीरे-धीरे श्वास निकालें। इस आसन को दो से तीन बार तक दोहरायें। जब आप इस आसन में हों तो गहरी श्वास भी ले तथा छोड़ सकते हैं।

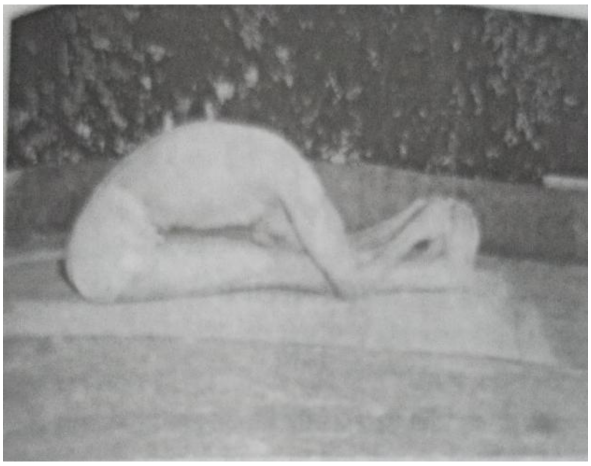

जब आप प्रवीणता प्राप्त कर लें तो आप इस आसन में सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ तीन से पाँच मिनट तक सुखपूर्वक रुक सकते हैं। इस आसन में रहने की स्थिति में मेरुदण्ड एवं पीठ की पेशियों पर ध्यार केन्द्रित करना चाहिए।

लाभ

पीठ की अकड़न, पीठ की पेशियों की ऐंठन तथा पीठ की अन्य व्याधियाँ अच्छी हो जाती हैं। मेरुदण्ड का लचीलापन बढ़ जाता है। घुटनों के पश्च भाग की मांसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं। यह सुस्ती को दूर करता है और वृक्कों तथा उदरीय अंगों को तीव्र करता है। यह मेरुदण्ड को नवजीवन प्रदान करता और पाचन क्रिया को अधिक बढ़ाता है।

टिप्पणी : अधिकांश अभ्यासकर्ताओं के विषय में बहुत दिनों तक नियमित अभ्यास के द्वारा ही इस आसन में पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। सावधानी रखनी चाहिए कि इसके कारण कटि-प्रदेश पर अत्यधिक तनाव न पड़े ।

११. भुजंगासन

विधि

भूमि पर इस भाँति पट लेट जायें कि आपका मस्तक भूमि को स्पर्श करता रहे। हथेलियों को नीचे फर्श पर कन्धों के नीचे रखें। कोहनियों को शरीर के पास रखें। घुटनों को मिला कर रखें। पैर की उँगलियों को पीछे की ओर इस प्रकार तानें कि वे पीछे की ओर अभिमुख हों। हथेलियों को फर्श पर जोर से दबाते हुए श्वास लें और धीरे-धीरे शरीर का ऊपरी भाग उठायें। ऐसा अनुभव करते हुए कि कशेरुका की एक-एक हड्डी मुड़ रही है। शिर को बहुत पीछे की ओर इतना खींचें कि नाभि से ले कर शरीर का केवल निचला भाग फर्श का स्पर्श कर रहा हो। अनुभव

करें कि शरीर का सम्पूर्ण भार पैरों और कूल्हे (रीढ़ का पिछला छोर) पर टिका हुआ है। शरीर का भार हथेलियों पर नहीं होना चाहिए। जितने दीर्घ काल तक सम्भव हो (२० से ३० सेकण्ड तक) इस आसन को बनाये रखें। उदर तथा कूल्हे पर मन केन्द्रित करें। शनैः-शनैः शरीर को नीचे लायें और श्वास निकालें। पूरे शरीर को फर्श पर विश्राम हेतु मुक्त कर दें और गहरी श्वास के साथ शिथिल कर दें। इस आसन को तीन बार दोहरायें। अन्त में मकरासन में विश्राम करें (अग्रिम आसन देखें)।

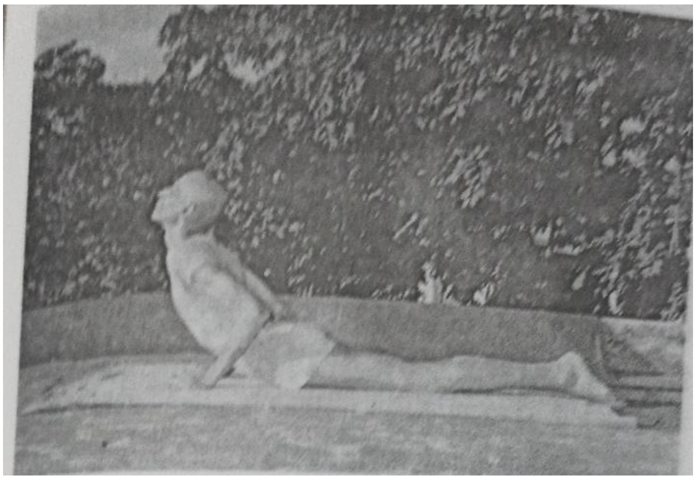

लाभ

यह आसन मेरुदण्ड को पुष्ट बनाता और वक्षःस्थल को विकसित करता है। यह मेरुदण्ड के सामान्य रोगों को सुधारने में भी सहायक है। उदर तथा पृष्ठ-देश की पेशियाँ स्वयमेव अच्छी तरह फैल जाती हैं। परिणामतः मेरुदण्ड, उदर और पृष्ठ-देशों में समुचित रुधिर-संचार सम्पन्न करता है। यह शारीरिक उष्णता को बढ़ाने में सहायक होता, अच्छी क्षुधा को उत्पन्न करता, कोष्ठबद्धता का निवारण करता और पाचन शक्ति को वर्धित करता है। यह आसन विशेषतः मेरुदण्ड को लचीला और सुनम्य बनाता है। इसका अर्थ है-व्यक्ति को सुस्वास्थ्य, ओजस्विता और नवयौवन प्रदान करना।

यह महिलाओं के लिए अण्डाशय और गर्भाशय को आरोग्य प्रदान करने में विशेष रूप से सहायक है।

१२. मकरासन

विधि

अधोमुख हो कर फर्श पर लेट जायें। भुजाओं को दायें-बायें (आर-पार) बाँध कर शिर के नीचे रखें। हथेलियाँ कन्धों पर स्थित हों। पैरों को जितना भी अधिक सम्भव हो सके, तानें। पैरों की उँगलियाँ बाहर की ओर हों। सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ इस आसन में दो से तीन मिनट तक विश्राम करें।

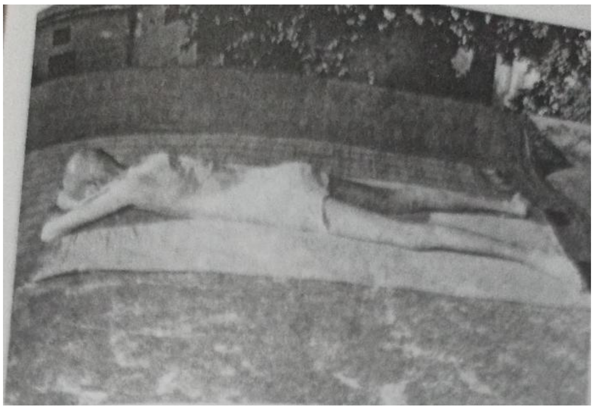

लाभ

जिन मांसपेशियों पर अधिक श्रम पड़ा हो उन्हें विश्राम और शिथिलीकरण की आवश्यकता होती है। एकमात्र मकरासन ही इन मांसपेशियों को सुनिश्चित रूप से त्वरित और कुशलतापूर्वक पूर्ण विश्राम और आराम प्रदान करता है।

१३. शलभासन

विधि

भूमि पर इस भाँति समतल लेट जायें कि मुख नीचे की ओर हो। उँगलियों को मुट्ठी में बाँध कर हाथों को शरीर के पार्श्व में रखें। शिर को ऊपर उठा कर चिबुक (ठुड्डी) को भूमि पर टिकायें। निःश्वास लें तथा मुट्ठियों को भूमि पर दबा कर शरीर को कड़ा करें। पैरों को शनैः-शनैः यथाशक्य ऊपर उठायें। पैरों को सीधी पंक्ति में रखें जब कि दोनों जंघाएँ, घुटने तथा गुल्फ (टखने) परस्पर स्पर्श करते हों। पैरों का भार शरीर तथा हाथों पर पड़े। नितम्बों की मांसपेशियों को संकुचित करें, जंघाओं की मांसपेशियों को तानें तथा पैरों की स्थिति को और आगे तक फैलायें। प्रारम्भ में कुछ क्षणों तक इस आसन में बने रहें और धीरे-धीरे कालावधि को बढ़ायें। शरीर के ऊपरी भाग अर्थात् कटि-प्रदेश से ऊपर के भाग पर धारणा करें। शनैः-शनैः पैरों को भूमि पर लायें और इसके साथ-ही-साथ निःश्वास छोड़ें। सामान्य श्वसन के साथ विश्राम लें। इस आसन को दो या तीन बार दोहरायें। मकरासन में विश्राम लें।

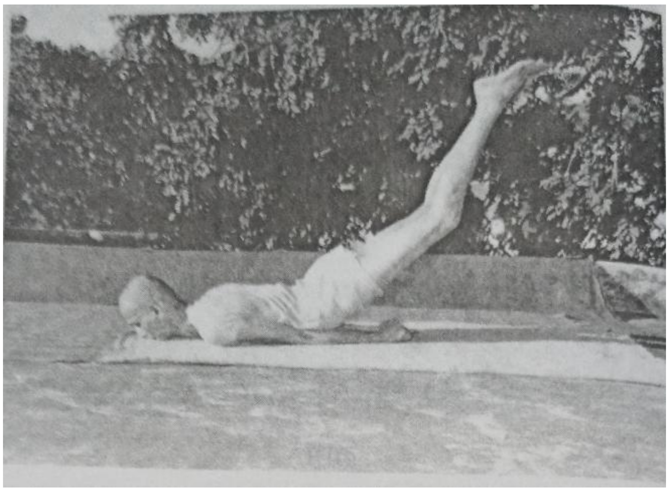

लाभ

इस आसन के अभ्यास से मेरुदण्ड सुनम्य तथा ढीला बनता है। यह पृष्ठ-शूल तथा कठोर श्रम आदि जनित मेरुदण्ड के तनाव से छुटकारा दिलाता है। यह पृष्ठ-भाग की मांसपेशियों तथा उदर-देश के आन्त्र अंगों को स्वस्थ बनाता और कटि तथा त्रिक-प्रदेशों की पीड़ा को दूर करता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह पाचन में सहायता देता तथा जठरीय रोगों को दूर करता है।

१४. धनुरासन

विधि

भूमि पर समतल लेट जायें। मुख नीचे की ओर रहे। हाथों को अपने पार्श्व में रखें। श्वास छोड़ें तथा पैरों को जंघाओं की ओर खींचते हुए घुटनों पर पैरों को झुकायें। बाहुओं को पीछे की ओर तानें और दक्षिण गुल्फ को दक्षिण हस्त से तथा वाम गुल्फ को वाम हस्त से पकड़ लें। सामान्य श्वसन लेते हुए हाथों की स्थिति सुदृढ़ करें। हाथों तथा पाँवों को कस कर, खींच कर शिर, शरीर तथा घुटनों को इस प्रकार उठायें कि शरीर का सम्पूर्ण भार उदर के ऊपर टिका रहे। कुछ क्षणों तक इस आसन में बने रहें। कालावधि में शनैः-शनैः वृद्धि करें। आसन में रहते समय उदर, जंघाओं तथा पृष्ठ-प्रदेश की मांसपेशियों पर सामान्य श्वास लेते हुए धारणा करें। गुल्फों को छोड़ दें, पैरों को फैलायें तथा पैरों, वक्षःस्थल तथा शिर को विश्राम हेतु एक सीधी रेखा में भूमि पर लायें। कुछ क्षणों तक मकरासन में विश्राम करें। इस आसन को दो अथवा तीन बार दोहरायें।

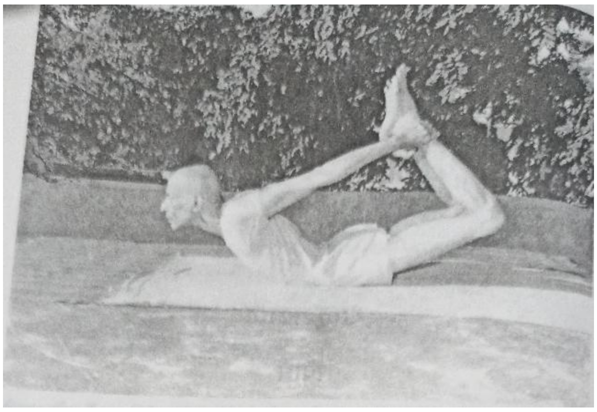

लाभ

यह आसन कोष्ठबद्धता को दूर करता तथा यकृत, अग्न्याशय और वृक्क को स्वस्थ बनाता है। कटि तथा त्रिक अस्थियों की कशेरुकाएँ भी स्वस्थ बनती हैं। यथोचित रुधिर-परिसंचरण सम्पन्न होता है जिससे सुस्वास्थ्य को समर्थन प्राप्त होता है। यह मेरुदण्ड को सुनम्य तथा ढीला भी बनाता है तथा मेरुदण्ड की साधारण पीड़ाएँ नियन्त्रित हो जाती हैं।

१५. चक्रासन

विधि

अपनी पीठ के बल लेट जायें। पैरों को घुटनों पर मोड़ें और तलवों को नितम्बों के निकट भूमि पर रखें। हथेलियों को अपने शिर के बगल में

इस प्रकार रखें कि उँगलियाँ शरीर की ओर अभिमुख हों। हाथों तथा पैरों पर स्थित रह कर शरीर को शनैः-शनैः ऊपर उठायें और इस भाँति अपने मेरुदण्ड को वक्र बनायें। इस आसन में ५ सेकण्ड तक रहें और इस कालावधि को बढ़ा कर एक या दो मिनट तक ले जायें।

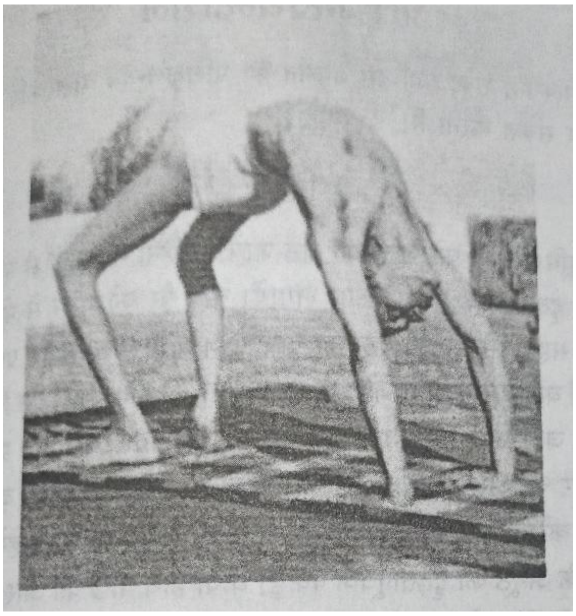

लाभ

इस आसन से शलभ, भुजंग तथा धनुः आसनों के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। इस आसन के समय शरीर के सभी भागों को उपयुक्त व्यायाम मिलता है।

१६. अर्ध-मत्स्येन्द्रासन

मत्स्येन्द्र शब्द यहाँ इस आसन का प्रशिक्षण देने वाले ऋषि या गुरु की ओर संकेत करता है।

विधि

भूमि पर पैरों को फैला कर बैठ जायें। दाहिना पैर घुटने से मोड़ें और एड़ी को दृढ़तापूर्वक मूलाधार पर लगायें। बायें पैर को घुटने से मोड़ें और हाथों के सहारे इसे भूमि से उठा कर दाहिनी जंघा के पार्श्व में इस प्रकार रखें कि बायाँ बाह्य गुल्फ दायीं जंघा के बाह्य भाग को स्पर्श करे। इस स्थिति में सुदृढ़ हो जायें और अग्र जंघा को भूमि पर लम्बतः रखें। अब ग्रीवा को बायीं ओर ९० अंश मोड़ें जिससे कि दाहिनी काँख बायें घुटने के बाह्य भाग को स्पर्श करे। दायें हाथ को बायें घुटने के ऊपर से ले जा कर दाहिने हाथ से बायें पैर के अँगूठे को दृढ़तापूर्वक पकड़ें। बायाँ हाथ पीछे की ओर घुमा कर उससे दायीं जंघा को पकड़ने के लिए कटि के दायीं ओर ले जायें। शिर को बायें कन्धे के ऊपर मोड़ें और उस पर टकटकी लगा कर देखें। मेरुदण्ड को पूरा मरोड़ दें और स्थिति को दृढ़ करें। सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ आसन को बनाये रखें। मेरुदण्ड तथा श्वास-प्रवाह पर

धारणा करें। इस आसन में ३० सेकण्ड से एक मिनट तक रहें और फिर खोल दें। समय को धीरे-धीरे दो या तीन मिनट तक बढ़ायें। बायाँ पैर मोड़ कर इस प्रक्रम को दोहरायें।

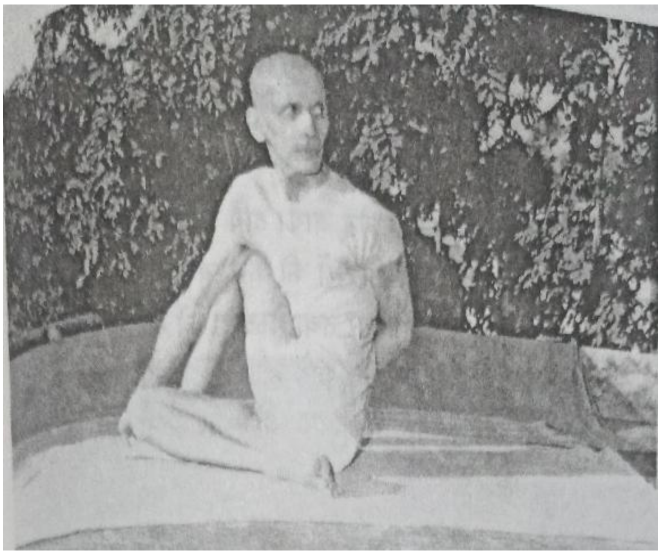

लाभ

इस आसन का नियमित अभ्यास कटिवात तथा पीठ की पेशियों की पीड़ा को दूर करता है। मेरुदण्ड लचीला बनता है। मांसपेशियों तथा उदर-भाग के अंगों की मालिश होती है। मेरुदण्ड की स्नायुओं तथा अनुसंवेदी तन्त्र स्वच्छ तथा शुद्ध रक्त की अच्छी आपूर्ति के कारण शक्तिवान् बनते हैं। कोष्ठबद्धता तथा अग्निमान्द्य दूर हो जाते हैं। स्नायविक तन्त्र तथा मेरुदण्ड की कशेरुका को अच्छा व्यायाम मिलता है और वे शक्तिवान् हो जाते हैं।

१७. योग-मुद्रा

विधि

तह किये हुए कम्बल पर बैठ जायें। दायें पैर को बायीं जंघा पर और बायें पैर को दायीं जंघा पर रख कर पैरों की कैंची बना लें। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो पद्मासन धारण कर लें। शिर तथा मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए हाथों को पीछे ले जायें और धड़ के पीछे बायें हाथ से दाहिनी कलाई को पकड़ लें। निःश्वास छोड़ें और आगे की ओर धीरे-धीरे इतना झुकें कि मस्तक भूमि को स्पर्श करे। अन्तःश्वसन के बिना अथवा सामान्य श्वसन के साथ (जो आपको सुखद लगे) प्रारम्भ में दश सेकण्ड तक इस आसन में रहें। मस्तक, उदर तथा पृष्ठभाग की

मांसपेशियों पर चित्त एकाग्र करें। तत्पश्चात् बैठने की सीधी स्थिति में धीरे-धीरे वापस आ जायें और हाथों को खोल दें। सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ कालावधि को पाँच से छह मिनट तक शनैः-शनैः बढ़ायें।

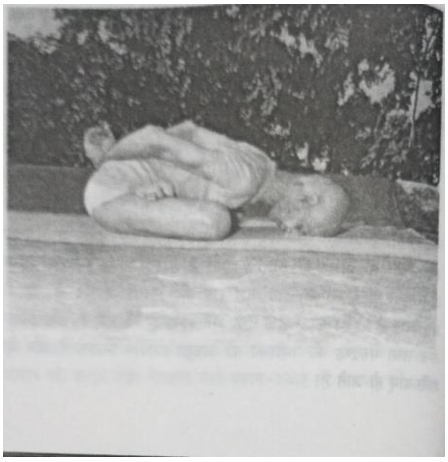

रूपान्तर : आप कलाई को पकड़ने के स्थान पर पैर की उँगलियों को-दाहिने हाथ से दायें पैर की उँगलियों को तथा बायें हाथ से बायें पर की उँगलियों को पकड़ सकते हैं।

लाभ

यह उदर के विकार को दूर करता तथा उदर के स्रावी अवयवों को बलवान् बनाता है। यह क्रमाकुंचक क्रियाशीलता को तीव्र करता, कोष्ठबद्धता का निवारण करता तथा पाचन शक्ति को उद्दीप्त भी करता है। यह आसन कुण्डलिनी-शक्ति को जगाने में भी सहायक होता है।

१८. मयूरासन

विधि

भूमि पर घुटनों के बल इस प्रकार बैठें कि घुटने परस्पर थोड़ा पृथक् रहें तथा पैर की उँगलियाँ भूमि पर टिकी हों। शरीर को आगे की ओर झुकायें। भुजाओं को परस्पर मिलायें और हथेलियों को भूमि पर इस प्रकार टिकायें कि दोनों कनिष्ठिकाएँ परस्पर स्पर्श करती हों तथा सभी हस्तांगुलियाँ पैर की ओर अभिमुख हों। भुजाओं को दृढ़ रखें। वे कोहनियों पर मुड़ी हों। प्रबाहुओं को परस्पर सन्निकट रखें।

आगे की ओर शनैः-शनैः झुकें तथा उदर को कोहनियों पर और वक्षःस्थल को प्रगण्डों पर टिकायें। पैरों को एक-एक करके पीछे की ओर फैलायें तथा उन्हें मिला कर अनम्य रखें। निःश्वास छोड़ें तथा पैरों को उठाते और सीधा रखते हुए अपने शरीर को फैलायें। सन्तुलन को सुरक्षित कर ले तथा शरीर को भूमि के समानान्तर और अधिक फैलायें और जितनी देर तक सुविधापूर्वक रह सकें, इस आसन में रहें। प्रारम्भ में इस आसन को कुछ सेकण्ड तक बनाये रखें। तब सामान्य श्वसन के साथ कालावधि को दो से तीन मिनट तक शनैः -शनैः बढ़ायें। उदर-प्रदेश पर मन को एकाग्र करें। इस आसन को खोलने के लिए प्रथम शिर को और तत्पश्चात् पैरों को नीचे लायें। तब घुटनों को हाथों के पार्श्व में रखें और तत्पश्चात् हाथों की स्थिति को खोल दें। भूमि पर चित लेट जायें और शवासन में विश्राम करें।

आप देखेंगे कि आपकी कलाइयाँ ज्यों-ज्यों बलवती बनती जाती हैं त्यों-त्यों आपका सन्तुलन तथा आसन में रहने की कालावधि बढ़ती जाती है।

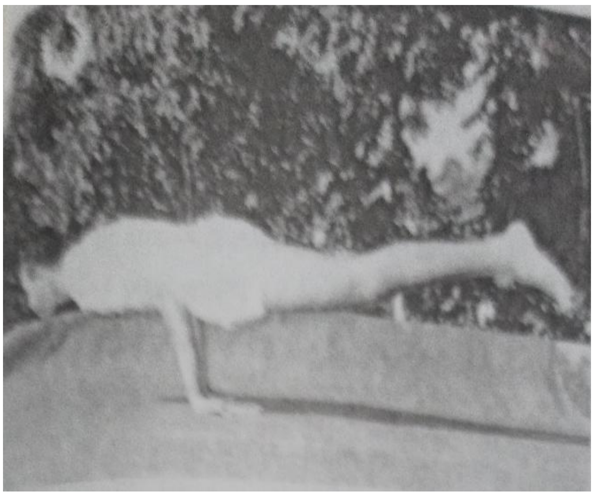

टिप्पणी : नव-छात्रों को पैरों को भूमि से ऊपर उठाने पर सन्तुलन बनाये रखने में कठिनाई हो सकती है। कभी-कभी आगे की ओर उनका अवपात हो सकता है और उनकी नासिका को चोट लग सकती है। इससे बचने के लिए सामने एक गद्दी रख सकते हैं। जब कभी सन्तुलन बनाये रखने में कोई कठिनाई आये तो पार्श्व की ओर गिरने का प्रयास करें। अन्तिम स्थिति में शिर, घड़ तथा पैर एक सीधी पंक्ति में भूमि के समानान्तर होंगे।

लाभ

यह आसन प्रबाहुओं, कोहनियों तथा कलाइयों को बलवान् बनाने के अतिरिक्त विभिन्न उदरीय विकारों का निवारण करता है। यह पाचन शक्ति को बढ़ाता तथा उदर, वृक्क और प्लीहा को स्वस्थ बनाता है। यह मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिए विशेष लाभदायक है। इससे उदर-प्रदेश के आन्तरिक अवयवों में नव-रक्त का समुचित संचरण सम्पन्न होता है।

१९. बैठ कर किये जाने वाले आसन

१. पद्मासन

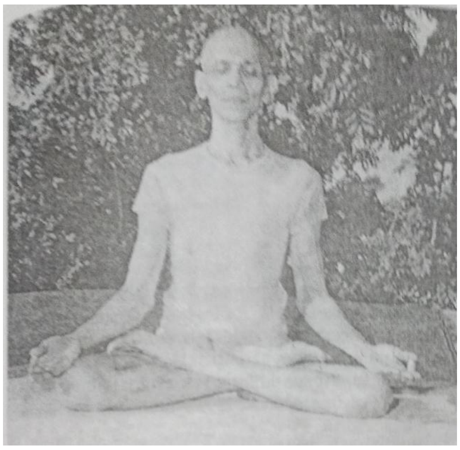

विधि

समतल भूमि पर तह किये हुए कम्बल के ऊपर पैरों को आगे की ओर फैला कर बैठ जायें। मेरुदण्ड तथा ग्रीवा को बिना झुकाये हुए सदा सीधा रखिए। यह एक सामान्य निर्देश बैठ कर किये जाने वाले समस्त आसनों के लिए है। दाहिने पैर को घुटने पर मोड़ें और उसे बायीं जंघा पा रखें। तत्पश्चात् बायें पैर को घुटने पर मोड़ें और उसको दाहिनी जंघा पर रखें। दोनों हाथों को उनकी जानु-सन्धियों पर इस प्रकार रखें कि हथेलियां ऊर्ध्वमुखी हों। झुकी हुई तर्जनी उँगलियाँ अँगूठों के मध्य भाग को स्पर्श करें तथा दूसरी उँगलियों को फैला कर रखें। विकल्प में

आप दोनों हाथों की उँगलियों का एक पाश बना सकते हैं और पाशबद्ध हाथों को बायें गुल्फ पर रख सकते हैं। कुछ व्यक्तियों के लिए यह सुविधाजनक हो सकता है।

प्रारम्भ में दश मिनट तक बैठें और तब अपने सुविधानुसार कालावधि को शनैः-शनैः बढ़ायें।

२.सिद्धरान

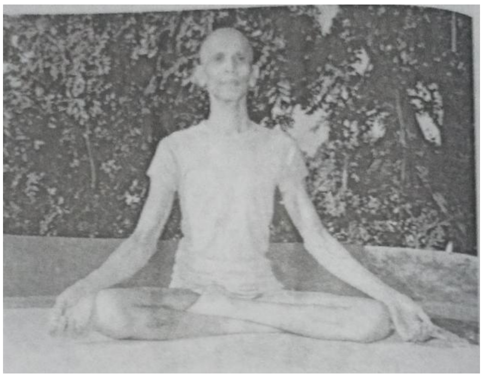

विधि

एक एड़ी को गुदा (पोषण-नाल या पाचक नलिका के अन्तस्थ मुख) पर रखें। दूसरी एड़ी को जननेन्द्रिय के मूल में पर रखें। पैरों को इस प्रकार सुव्यवस्थित रखें कि दोनों गुल्फ-सन्धियाँ परस्पर स्पर्श करती रहें। हाथ पद्मासन की भाँति रखे जा सकते हैं।

३. स्वास्तिकासन

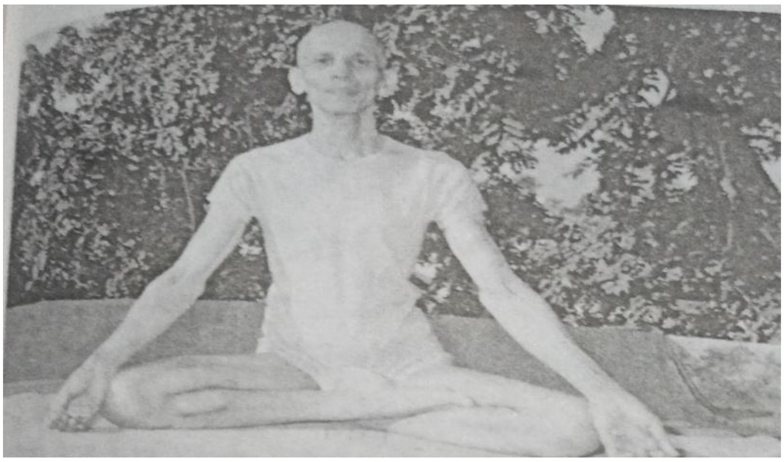

विधि

बायें पैर को मोड़ें और उसके अधोभाग को दाहिनी जंघा की मांसपेशियों पर रखें। इसी प्रकार दाहिने पैर को मोड़ें और उसे बायीं जंघा तथा पिण्डली की मांसपेशियों के मध्य के स्थान में डाल दें। अब आपके दोनों पैर जंघाओं तथा पिण्डलियों के मध्य में होंगे। हाथों को पद्मासन की भाँति रखें।

४. वज्रासन

विधि

घुटनों के बल भूमि पर बैठ जायें। धीरे-धीरे नितम्बों को एड़ियों के मध्य में टिकायें। पिण्डलियों की मांसपेशियाँ जंघाओं को स्पर्श करें। पैर की उँगलियों से ले कर घुटनों तक के उपांग भूमि पर टिके रहने चाहिए। शरीर का सम्पूर्ण भार घुटनों तथा गुल्फों पर टिकाना चाहिए। आपको अभ्यास के प्रारम्भ में अपनी जानु तथा गुल्फ-सन्धियों में किंचित् पीड़ा अनुभव हो सकती है, किन्तु यह अभ्यास से शनैः-शनैः दूर हो जायेगी। दाहिने हाथ की हथेली को दाहिने घुटने पर तथा बायें हाथ की हथेली को बायें घुटने पर रखें। मेरुदण्ड तथा ग्रीवा को सीधा रखें। यह अनेक लोगों के लिए सुविधाजनक बैठने का आसन हो सकता है।

लाभ

उपर्युक्त आसनों में से किसी एक आसन में बैठने पर शरीर में स्थिरता आती है जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण शरीर में रक्त तथा प्राण का प्रवाह सुव्यवस्थित रूप से होता है जो कि ध्यान के लिए एक पूर्वपिक्षा है। इन बैठने के आसनों से कटि-प्रदेश की शक्ति में वृद्धि होती, स्नायु-तन्त्र स्वस्थ बनता तथा प्राण-शक्ति में सन्तुलन आता है। यदि कोई व्यक्ति भोजन के तुरन्त बाद वज्रासन में आधे घण्टे तक बैठे तो भोजन अच्छी प्रकार पच जायेगा। इस आसन से पैरों तथा जंघाओं के स्नायु तथा मांसपेशियाँ सुदृढ़ हो जाती हैं।

२०. प्राणायाम

प्राण (प्राणाधार-शक्ति) का नियमन प्राणायाम कहलाता है। प्राण मात्र श्वास-प्रश्वास नहीं है। श्वसन-प्रक्रिया (श्वास लेना, श्वास छोड़ना और श्वास रोके रखना) अपने-आपमें प्राण नहीं है, बल्कि एक संकेत है कि प्राण क्रियाशील है। चूँकि प्राण कोई भौतिक वस्तु नहीं है; अतः हम इसको देख नहीं सकते, बल्कि हम इसके अस्तित्व का अनुमान श्वसन-प्रक्रिया से कर सकते हैं। प्राण की एक विशेष क्रिया द्वारा वायु ली जाती है और बाहर छोड़ी जाती है। कुछ लोग मानते हैं कि 'प्राण' अनेक होते हैं और दूसरे लोग मानते हैं कि 'प्राण' एक है। वास्तव में प्राण एक अकेली शक्ति है जो इसकी विभिन्न क्रियाओं के दृष्टिकोण से अवलोकन करने पर अनेक प्रतीत होती है। प्राणायाम केवल श्वास को ही नहीं अपितु इन्द्रियों और मन को भी सुव्यवस्थित करने की एक विधि है। प्राणायाम के अभ्यास द्वारा शरीर सुदृढ़ और स्वस्थ हो जाता है, अत्यधिक वसा घट जाती है तथा अभ्यासी के मुख पर एक आभा आ जाती है। वह सर्दी, खाँसी आदि जैसी व्याधियों से मुक्त हो जाता है।

प्राणायाम के अभ्यास से फुफ्फसों के अग्र-भाग प्राण-वायु की समुचित पूर्ति पा जाते हैं। संस्थान में रुधिर का गुणात्मक और परिमाणात्मक सुधार हो जाता है। समस्त ऊतकों और कोशों का पोषण प्रचुर शुद्ध रुधिर और लसीका से हो जाता है। चयापचय की प्रक्रिया एक दक्षतापूर्ण विधि से सम्पन्न हो जाती है।

आवश्यक टिप्पणी :

(१) प्राणायाम के व्यायामों के पूर्व शवासन में विश्राम वांछनीय है जिससे प्राणायाम प्रारम्भ करने से पूर्व तन और मन अविक्षुब्ध और शान्त हो सकें।

(२) समस्त प्राणायाम-व्यायामों का अभ्यास बैठ कर किये जाने वाले आसनों में से किसी एक आसन में शिर, ग्रीवा और मेरुदण्ड सीधा रख कर करना चाहिए।

१. गहरे श्वसन का व्यायाम

विधि

शवासन में शिथिलन के पश्चात् बैठने वाले आसनों में से अपनी सुविधा के अनुसार किसी एक आसन पर बैठें। बिना कोई आवाज किये दोनों नासारन्ध्रों से पूरक तथा रेचक करें। पूरक करते समय वक्ष और फुफ्फुसों को फुलायें और अनुभव करें कि स्वच्छ प्राण-वायु शरीर में प्रवेश कर रही है और रेचक करते समय फुफ्फुसों को जितना भी सम्भव हो सके सिकोड़ें और अनुभव करें कि समस्त अशुद्धता बाहर की ओर निर्गत हो रही है।

यदि आपको अनुभव हो कि शीत के कारण नासारन्ध्र बन्द हो गये हैं तो दाहिने अँगूठे से दाहिने नासारन्ध्र को धीमे से दबायें और श्वास लें और बायें नासारन्ध्र से बिना कोई आवाज उत्पन्न किये श्वास

निकालें। अब दाहिने हाथ की कनिष्ठिका और अनामिका उँगलियों की सहायता से बायें नासारन्ध्र को बन्द करें। दाहिने नासारन्ध्र से बिना आवाज के पूरक तथा रेचक करें। यह प्रक्रिया छह बार करें। शनैः-शनैः इस प्रक्रिया को बारह बार तक बढ़ायें। यह एक आवर्तन हुआ। आप अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार आवर्तन की संख्या बढ़ा सकते हैं।

लाभ

यह श्वास नली एवं नासा-पथों को स्वच्छ करता, प्रतिश्याय, शिर की पीड़ा आदि से व्यक्ति को मुक्त करता और फुफ्फुसों की श्वसन-क्षमता में वृद्धि करता है।

२. कपालभाति

'कपाल' का अर्थ है ललाट तथा 'भाति' का अर्थ है चमकना। यह व्यायाम कपाल को स्वच्छ करता है। इस प्रकार यह एक शुद्धिकारक व्यायाम हो जाता है। इसका नियमित अभ्यास अभ्यासकर्ता को देदीप्यमान मुख (चेहरा) प्रदान करता है। यह साधक को भस्त्रिका-प्राणायाम (देखिए, प्राणायाम संख्या ३) के अभ्यास के लिए तैयार करता है।

विधि

बैठने वाले आसनों में से किसी एक में बैठें और मेरुदण्ड तथा ग्रीवा सीधी रखें। निम्न पेडू को थोड़ा क्रियाशील करने के साथ ही नासारन्ध्रों से शीघ्र-शीघ्र रेचक करें। नासाग्र पर मन एकाग्र करें। आपको चेहरे की मांसपेशियों को सिकोड़ना नहीं चाहिए। प्रत्येक रेचक के पश्चात् लघु पूरक करना चाहिए। प्रारम्भ करने के लिए आप एक रेचक प्रति सेकण्ड की गति से कर सकते हैं और आप एक या दो आवर्तन का अभ्यास कर सकते हैं। प्रत्येक आवर्तन आठ या दश रेचकों का हो। प्रत्येक आवर्तन के परचार सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ विश्राम करें। जब व्यक्ति अभ्यास में पर्यान्न प्रगति कर ले तो वह प्रत्येक आवर्तन में १२० रेचक तक पहुँचने तक प्रत्येक आवर्तन में दश रेचक की दर से प्रति सप्ताह वृद्धि कर सकता है। प्रातः और सायं दो या तीन आवर्तन किये जा सकते हैं।

लाभ

यह व्यायाम कपाल, श्वास-तन्त्र और नासा-पथों को स्वच्छ करता है। यह श्लेष्मा के रोगों को नष्ट करता है तथा श्वास नली की ऐंठन को दूर करता है। परिणामतः दमा में आराम और आरोग्यता भी प्राप्त होती है। रुधिर की अशुद्धता भी निर्गत हो जाती है। हृदय समुचित रूप से कार्य करने लगता है। रक्तवह-तन्त्र, श्वास-यन्त्र और पाचन प्रणाली पर्याप्त मात्रा में आरोग्य हो जाते हैं।

३. भस्त्रिका

भस्त्रिका का अर्थ है धौंकनी। जोर से जल्दी-जल्दी रेचक इस प्राणायाम का विशेष लक्षण है।

विधि

बैठने वाले आसनों में से किसी भी एक आसन में बैठें। नासारन्ध्रों से जल्दी-जल्दी एक के बाद एक शीघ्रता से गहरी-गहरी श्वास लेना और निकालना चाहिए। इसमें प्रत्येक रेचक और पूरक के साथ पेट का सिकोड़ना तथा फुलाना होना चाहिए। अपनी क्षमता के अनुसार एक आवर्तन में छह, आठ या दश रेचक से प्रारम्भ करना चाहिए। प्रत्येक आवर्तन में अन्तिम रेचक के पश्चात् जितनी देर सुविधापूर्वक कर सकें गहरा पूरक और कुम्भक करें।

भस्त्रिका के एक आवर्तन के पश्चात् कुछ देर विश्राम करें। इस बात का ध्यान रहे कि फुफ्फुसों पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़े।

प्रारम्भिक अभ्यासकर्ता दो या तीन आवर्तन से प्रारम्भ कर सकते हैं जिसमें प्रत्येक आवर्तन छह या दश रेचक का और प्रत्येक रेचक एक सेकण्ड का हो। आवर्तन की संख्या दो या तीन रखते हुए शनैः-शनैः रेचक तथा पूरक की संख्या बीस से तीस प्रति आवर्तन तक बढ़ायें।

लाभ

भस्त्रिका गले की सूजन को आराम देता, जठराग्नि को वर्धित करता, कफ के जमाव को नष्ट करता, नासिका और वक्ष की व्याधियों को दूर करता और दमा, क्षय तथा वात और पित्त के आधिक्य का उन्मूलन करता है। यह शरीर को उष्णता प्रदान करता है। अभ्यासकर्ता का स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है।

४. शीतली

विधि

बैठने वाले आसनों में से किसी एक में बैठ जायें। मुँह खोलें और ओष्ठों को वर्तुलाकार बनायें। जिह्वा को बाहर निकाल कर नली की भाँति बनायें। जिह्वा से निर्मित नली के द्वारा वायु अन्दर खींचें। फुफ्फुसों को

जितना भी सम्भव हो सके, स्वच्छ तथा शीतल वायु से भरें। पूरक के पश्चात् जिह्वा मुख के अन्दर वापस करें और मुख बन्द कर लें। अपना शिर नीचा करें और जब तक कुम्भक में रहें, जत्रुक (हँसली अस्थि) को ठुड्डी से स्पर्श करायें। अपना शिर सीधा लाने के पश्चात् दोनों नासारन्ध्रों से धीरे-धीरे रेचक करें! प्रतिदिन दश से पन्दरह बार अभ्यास करें।

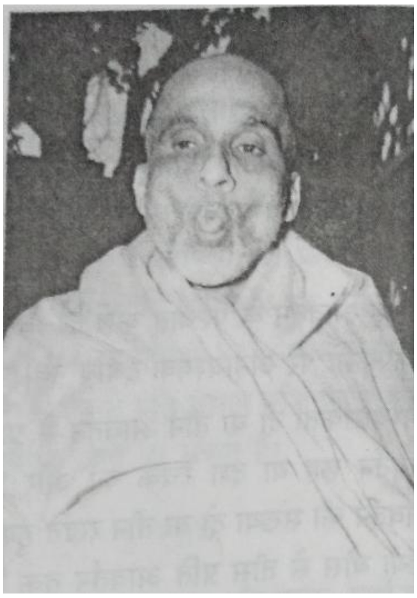

लाभ

यह प्राणायाम शरीर को शीतल करता, नेत्रों और कानों को प्रशमित करता तथा रक्त को शुद्ध करता है। यह तृषा बुझाता और क्षुधा को शान्त करता है। यह जीर्ण मन्दाग्नि, प्लीहा की सूजन, विभिन्न पुराने चर्मरोगों, हलके ज्वरों तथा पित्त और कफ दोषों को आरोग्य करता है।

प्राणायाम

५. सीत्कारी

विधि

मुँह खोलें, जिह्वा को ऊपर की ओर करके मुँह के अन्दर ही मोड़ें जिससे जिह्ना का अग्रभाग ऊपरी तालु को स्पर्श कर सके और सीत्कार की ध्वनि के साथ-साथ मुँह के द्वारा पूरक करें। पूरक के पश्चात् जिह्वा को अपनी मूल स्थिति में ले आयें। जितनी देर तक सुखपूर्वक सम्भव हो उतनी देर तक वायु को रोके रखें और तब नासारन्ध्रों के माध्यम से शनैः-शनैः रेचक करें। यह छह बार दोहरायें और धीरे-धीरे संख्या को बढ़ायें।

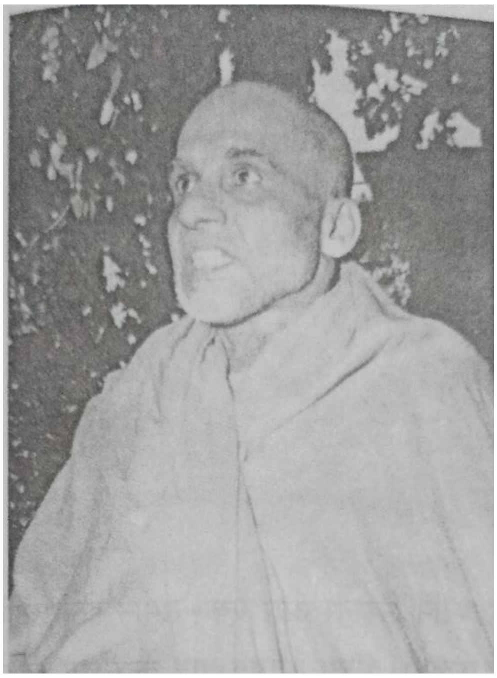

लाभ

लाभ वही हैं जो शीतली-प्राणायाम में होते हैं।

६. उज्जायी

विधि

किसी सुखद आसन में बैठें। मुँह-नेत्र बन्द करें। कण्ठ-द्वार की आंशिक बन्दी के कारण श्वास खींचने के समय उत्पन्न ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करें। निर्बाध और एकरूप से दोनों नासापुटों से श्वास खींचें। श्वास लेते समय उत्पन्न ध्वनि निरन्तर और एक-समान होनी चाहिए। जब आप श्वास लें तो वक्ष फुलायें। भीतर आगत वायु के संचार की अनुभूति ऊपरी तालु पर होती है और सीत्कार ध्वनिकारक होती है। ध्यान रखना चाहिए कि श्वास भीतर खींचते समय पेट न फूले। अब श्वास को गहराई से एवं सामान्य गति से दोनों नासारन्ध्रों के द्वारा धीरे-धीरे निकालें। कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् दाहिने अँगूठे से दाहिना नासापुट बन्द करने के बाद आप

बायें नासापुट के द्वारा भी रेचक कर सकते हैं। प्रारम्भ में यह प्रक्रिया पाँच से दश बार करें और अपनी क्षमता के अनुसार संख्या बढ़ायें।

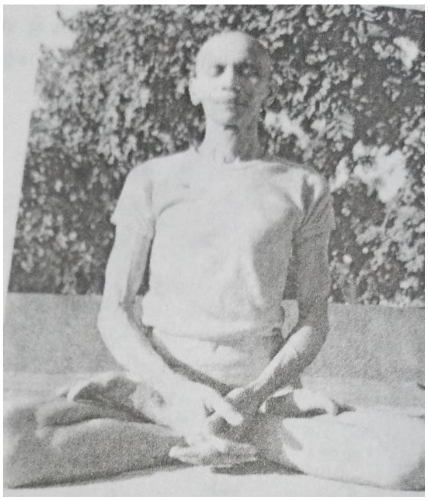

लाभ

यह प्राणायाम फुफ्फुसों में वायु भरता, स्नायुओं को प्रशान्त एवं समस्त शरीर को आरोग्य करता है। विश्राम की स्थिति में करने पर यह उच्च रक्तचाप या हृद्-धमनी की व्याधियों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए उत्तम है।

७. सुखपूर्वक प्राणायाम

विधि

बैठने के किसी आसन में बैठें। मेरुदण्ड, ग्रीवा और शिर सीधा रखें। मध्यमा एवं तर्जनी उँगलियाँ मुड़ी हुई तथा अन्य तीनों उँगलियाँ खुली रखें। दाहिने अँगूठे से दाहिना नासापुट बन्द करें। बिना कोई ध्वनि किये बायें नासापुट से बहुत ही धीरे-धीरे पूरक करें। तब दाहिने हाथ की कनिष्ठिका एवं अनामिका उँगलियों से बायाँ नासारन्ध्र बन्द करें। तब दाहिने अँगूठे को ढीला कर दाहिने नासापुट से अति-धीमी गति से रेचक करें। अब अर्ध-प्रक्रिया पूरी हुई। दाहिने नासापुट से धीरे-धीरे और सुव्यवस्थित रूप से वायु भीतर लें और बायें नासापुट से धीरे-धीरे श्वास निकालें। यह एक आवर्तन पूरा हुआ।

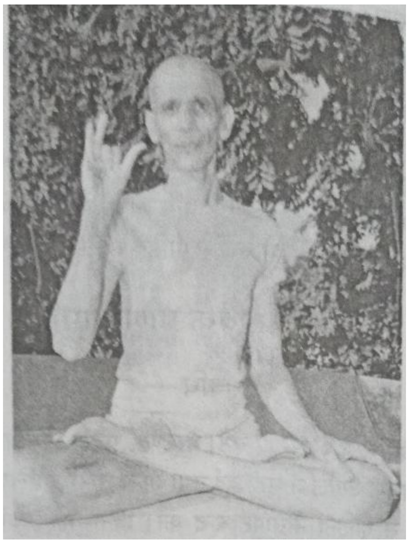

पूरक और रेचक का अनुपात १:२ होना चाहिए। प्रथम १५ दिनों में ५ सेकण्ड तक श्वास लें और १० सेकण्ड तक श्वास निकालें। अगले (द्वितीय) पक्ष में १० सेकण्ड श्वास लेने की और २० सेकण्ड श्वास छोड़ने की समयावधि बढ़ायें। पूरक और रेचक करते समय फुफ्फुसों का क्रमशः प्रसारण और संकोचन करें।

तीन मास के नियमित और सतत अभ्यास के पश्चात् आप श्वासरोक (कुम्भक) भी प्रारम्भ कर सकते हैं। श्वास लेने, रोकने और छोड़ने के समय का अनुपात १:२:२ होना चाहिए अर्थात् यदि आप ५ सेकण्ड तक श्वास लें, पूरक करें तो कुम्भक और रेचक प्रत्येक १० सेकण्ड तक का होना चाहिए। जैसे-जैसे आप अभ्यास में प्रगति करें, आप १:४:२ का अनुपात कर सकते हैं। कुम्भक के समय आप जालन्धर-बन्ध कर सकते हैं। इसकी विधि निम्नांकित है :

श्वास भीतर लेने के पश्चात् जब श्वास रोके हुए हों, ग्रीवा धीरे से झुकायें और जत्रुक (हँसली) पर ठुड्डी को टिका दें। यह बन्ध वायु के शिर की ओर ऊपर जाने के दबाव को रोकता है।

रेचक से पूर्व शिर धीरे-धीरे उठायें, उसे सीधा करके रखें, तब रेचक करें। यह जालन्धर-बन्ध का मोचन है।

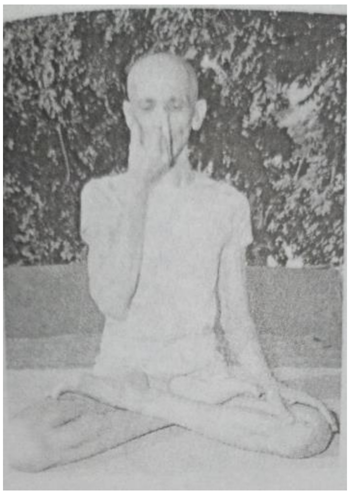

चेतावनी : यदि आप शिरदर्द, शिर का भारीपन, चक्कर आना, बेचैनी आदि का अनुभव करते हैं तो इसका आशय है कि आप अधिक परिश्रम एवं फुफ्फुसों पर अधिक दबाव डाल रहे हैं। अतएव आपको कुम्भक की समयावधि घटा देनी चाहिए। प्राणायाम के सही अभ्यास का प्रथम लक्षण है-ताजगी, शक्ति एवं शरीर तथा मन का हलकापन अनुभव होना। यदि आप इसका नकारात्मक परिणाम अनुभव करें तो कुम्भक के अभ्यास को तुरन्त बन्द कर दें और किसी कुशल व्यक्ति से परामर्श लें।

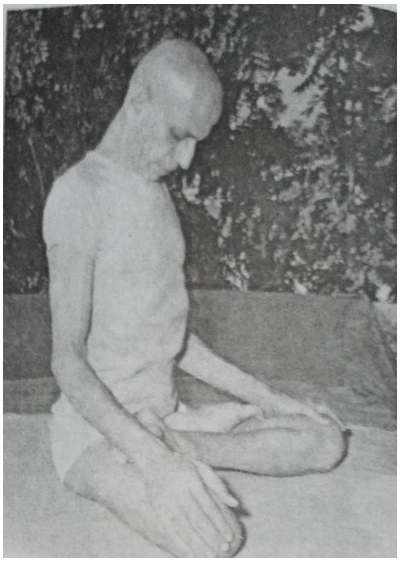

लाभ

यह प्राणायाम समस्त व्याधियों का हरण करता, नाड़ियों को शुद्ध करता, ध्यान के लिए मन को स्थिर करता, जठराग्नि और क्षुधा को उद्दीप्त करता तथा ब्रह्मचर्य-पालन में सहायक होता है।

२१.ध्यान

महर्षि पतंजलि के योग-सूत्र के अनुसार ध्यान योग का सातवाँ अंग है; आठवाँ समाधि है। धारणा के अभ्यास की अनेक विधियाँ हैं जो ध्यान तक ले जाती हैं। ध्येय-पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को समझना ही ध्यान का आशय है। मन ही यन्त्र (माध्यम) है जिसके द्वारा हम ध्यान करते हैं। ध्यान प्रारम्भ करने से पूर्व मन के क्रियाकलाप के स्वरूप का किंचित् अध्ययन आवश्यक है। मन का अस्तित्व केवल अपने क्रियाकलाप के समय ही पाया जाता है। चोर का आभास चोरी की क्रिया के समय ही पाया जा सकता है; क्योंकि अन्य सभी समयों में वह सामान्य व्यक्तियों की भाँति दिखायी देगा। जब चोर को ज्ञात होता है कि पुलिस उसके पीछे लगी है तो वह अपनी गतिविधियों पर रोक लगा देता है। इसी प्रकार यदि आप मन का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं तो मानसिक प्रक्रियाएँ या गतिविधियाँ कम हो जायेंगी। ध्यान की मुख्यतः दो अवस्थाएँ हैं। वे हैं- (१) अन्य सभी विषयों और विचारों का निषेध कर एक विषय या विचार पर लगातार चिन्तन करना, और (२) समस्त विचारों से मन को मुक्त रखना।

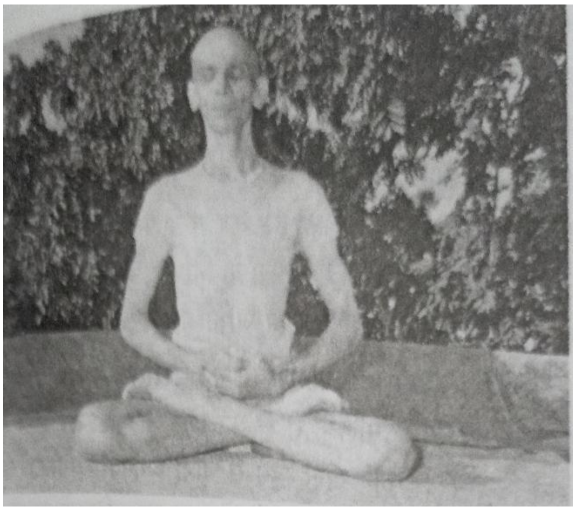

प्रथम अवस्था में अभ्यासकर्ता को अपना मन किसी विषय पर केन्द्रित करना चाहिए अथवा गुरु जी के द्वारा दीक्षित मन्त्र के जप में अपने-आपको व्यस्त रखना चाहिए। यदि वह किसी मन्त्र पर एकाग्रता रखते हुए मन्त्र का जप प्रारम्भ करता है तो उसे उन अन्य असंख्य विचारों की जानकारी प्राप्त होगी, जो उसके अवचेतन और अचेतन मन के तल में डूबे पड़े हैं तथा जो चेतना के ऊपरी तल पर उभर आते हैं और मन्त्र पर एकाग्रता में बाधा उत्पन्न करते हैं। जब मन्त्र पर भाव-सहित (अर्थ तथा अनुभूति-सहित) एकाग्रता दीर्घकाल के निरन्तर अभ्यास के द्वारा बढ़ जाती है तो मन ध्यानावस्था को प्राप्त हो जाता है।

द्वितीय अवस्था में अभ्यासकर्ता को सुखासन में बैठना चाहिए। नेत्रों को बन्द करें। पैर की उँगलियों से ले कर शिर की चोटी तक शरीर के सभी अंगों को विश्राम दें। कान खुले रहने से बाह्य ध्वनियाँ स्वभावतः ही उनसे टकरायेंगी। व्यक्ति को इन बाह्य ध्वनियों तथा अन्तःविचारों का भी साक्षी होना चाहिए जो अन्तहीन

अनुक्रम में उठती रह सकती हैं। व्यक्ति को उन अन्तः विचारों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए, न उसे बाह्य ध्वनियों पर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिए। बैठ कर करने वाले किसी आसन पर पूर्ण शिथिल हो कर और मन के अन्तः एवं बाह्य क्रियाकलापों पर एक साक्षी-जैसा बना रह कर लगातार दीर्घकाल तक सतत (बिना क्रम भंग किये) अभ्यास के पश्चात् मन निर्विषय बन जायेगा। प्रारम्भिक अवस्थाओं में ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्ति निद्रालीन न हो जाये। ध्यानाभ्यास में सफलता के लिए निष्ठा, लगन और विचार, वाणी तथा कर्म की पवित्रता महत्त्वपूर्ण घटक हैं।

२२. उपसंहार

मानव के शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक रूपों में सामंजस्य लाना ही योग का उद्देश्य है। इस पुस्तक के पूर्वोक्त पृष्ठों में विश्राम लेने (शिथिलीकरण) की विधि खड़े होने, लेटने और बैठने के विभिन्न आसनों में वर्णित है जो कि इसमें सामंजस्य लाती है। योग केवल एक दिन में एक-दो घण्टों का अभ्यासमात्र नहीं है; बल्कि यह पूरे चौबीस घण्टे की श्रेष्ठतम वैज्ञानिक जीवनविधा है। आप दिन-भर इन तीन प्रकार के आसनों में से किसी एक में ही रह सकते हैं; अतः उनमें एक कुशल समायोजन वांछनीय सामंजस्य प्रदान करेगा। **"योगस्थः कुरु कर्माणि"** योग में स्थित हो कर अपने समस्त कर्तव्यों का पालन करें। **"योगः कर्मसु कौशलम्** -कर्म में कुशलता ही योग है। यहाँ कुशल का अर्थ है परम सत्ता के स्वरूप के साथ एकरूपता। 'सदैव योगी रहें'- यह कृष्ण का निर्देश है। जीवन को योग में रूपान्तरित करें जिससे कर्म के समस्त क्षेत्रों में आपकी सफलता निश्चित रहे। नियमित अभ्यास से, अपनी प्रत्युत्पन्न मति, कौशल तथा प्रयोग से आप योगी बन सकते हैं और जिस किसी दशा या परिस्थिति में आप रह रहे हों, सुख तथा शान्ति का उपयोग कर सकते हैं।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज और सर्वशक्तिमान् प्रभु की आप पर सदैव अनुकम्पा (दया) बनी रहे!

टिप्पणी : विभिन्न योगासनों, प्राणायामों तथा बन्धत्रय और ध्यान की विस्तृत जानकारी के लिए कृपया श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज द्वारा लिखित 'योगासन', 'प्राणायाम-साधना' और 'कन्सेण्ट्रेशन एण्ड मेडीटेशन' पुस्तकों का अवलोकन करें।

परिशिष्ट

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

(संक्षिप्त जीवन-झाँकी)

श्री स्वामी चिदानन्द अपने पूर्वाश्रम में श्रीधर राव के नाम से ज्ञात थे। उनका जन्म २४ सितम्बर १९१६ को मंगलौर (कर्नाटक) में हुआ। उनके पिता का नाम श्रीनिवास राव तथा माता का नाम सरोजिनी था। उनके पिता एक समृद्ध जमींदार थे। वह दक्षिण भारत के कई ग्रामों, root(5, 3) - root(5, 3) भूमिखण्डों तथा भव्य भवनों के स्वामी थे।

स्वामी जी एक मेधावी छात्र थे। प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पूर्ण कर लेने के पश्चात् सन् १९३६ में उन्होंने लोयोला कालेज में प्रवेश लिया। इस विद्यालय के द्वार केवल मेधावी छात्रों के लिए खुले हुए थे। सन् १९३८ में उन्होंने स्नातक-उपाधि प्राप्त की। इस विद्यालय में ईसाइयत का वातावरण था। इस वातावरण में व्यतीत हुआ उनका अध्ययन-काल उनके लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। हिन्दू-संस्कृति के सर्वोत्तम तथा सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों के साथ समन्वित हो कर प्रभु यीशु, उनके पट्टशिष्यों तथा अन्य ईसाई सन्तों के जीवनादर्शों ने उनके हृदय में स्थान बना लिया। स्वामी जी के लिए बाइबिल का पाठ उनकी दिनचर्या का मात्र एक अंग नहीं था; बाइबल उनके लिए जीवन्त ईश्वर ही थी-वेदों, उपनिषदों तथा भगवद्गीता के उपदेशों के समान सजीव तथा वास्तविक। अपने सहज, विशाल दृष्टि-क्षेत्र के कारण वह कृष्ण में ही यीशु का दर्शन (न कि कृष्ण के स्थान पर यीशु का दर्शन) करने लगे। वह जितने विष्णु-भक्त थे, उतने ही यीशु-भक्त भी।

कुष्ठियों की सेवा उनका जीवनादर्श बन गयी। अपने आवास के बड़े-बड़े लानों में वह उनके लिए झोपड़ियाँ बनवा देते थे और उन्हें देव-तुल्य समझ कर उनकी सेवा करते थे। कुछ समय तक स्वामी शिवानन्द जी के साथ पत्र-व्यवहार के माध्यम से सम्पर्क रख कर वह सन् १९४३ में आश्रम-परिवार में सम्मिलित हो गये।

यह स्वाभाविक था कि अन्तेवासी के रूप में उन्होंने सर्वप्रथम आश्रम के शिवानन्द चैरिटेबल औषधालय का कार्यभार सँभाला। उनके हाथ में रोग-हरण की दिव्य क्षमता उत्पन्न हो गयी। इस कारण रोगियों की भीड़ बढ़ने लगी।

आश्रम में आने के बाद जल्दी ही उनकी कुशाग्र बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलने लगा। वह भाषण देने लगे, पत्रिकाओं के लिए लेख लिखने लगे तथा दर्शनार्थियों को उपदेशों से लाभान्वित करने लगे। जब सन् १९४८ में योग-वेदान्त फारेस्ट युनिवर्सिटी (अब योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी) की स्थापना हुई, तब पूज्य गुरुदेव ने उन्हें उसके कुलपति तथा राजयोग के आचार्य के रूप में नियुक्त करके उन्हें सर्वथोचित सम्मान प्रदान किया। सन् १९४८ में पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन्हें दिव्य जीवन संघ के महासचिव के रूप में मनोनीत किया। अब संस्था का महान् उत्तरदायित्व उन्होंने अपने कन्धों पर सँभाल लिया।

गुरुपूर्णिमा-दिवस, १० जुलाई १९४९ को पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन्हें संन्यास-परम्परा में दीक्षित किया। इसके बाद से वह 'स्वामी चिदानन्द' कहलाये। इस नाम का अर्थ है-जो सर्वोच्च चेतना तथा परमानन्द में संस्थित हो।

गुरुदेव के व्यक्तिगत प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका में दिव्य जीवन का सन्देश प्रसारित करने के उद्देश्य से सन् १९५९ के नवम्बर माह में श्री स्वामी चिदानन्द जी वहाँ की यात्रा करने के लिए निकल पड़े। मार्च १९६२ में वह वापस लौटे।

अगस्त १९६३ में पूज्य गुरुदेव की महासमाधि के पश्चात् वह दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष के रूप में चुने गये। इसके बाद वह दिव्य जीवन संघ के सुविस्तृत कार्यक्षेत्र में ही नहीं, वरन् संसार-भर के अगणित जिज्ञासुओं के हृदयों में भी त्याग, सेवा, प्रेम तथा आध्यात्मिक आदर्शवाद की पताका को ऊँचा उठाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहे।

सन् १९६८ में पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के शिष्यों तथा भक्तों के अनुरोध पर श्री स्वामी चिदानन्द जी ने संसार के अनेक देशों की यात्रा करते रहे और प्रारम्भ से ही श्री गुरुदेव के मिशन का कार्य अथक रूप से करते रहे तथा देश-विदेश में दिव्य जीवन का सन्देश पहुँचाते रहे।

एक उत्कृष्ट संन्यासी के रूप में आध्यात्मिक चुम्बकत्व के गुण के धनी स्वामी जी अनगिनत व्यक्तियों के प्रियपात्र बन गये तथा संसार-भर में दिव्य जीवन के महान् आदर्शों के पुनरुज्जीवन के लिए सभी दिशाओं में कठिन परिश्रम करते-करते अन्ततः २८ अगस्त २००८ को ब्रह्मलीन हो गये।